अप्रैल–2021
वर्ष–85 । अंक–4 । ₹–19 प्रति । ₹–220 वार्षिक

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

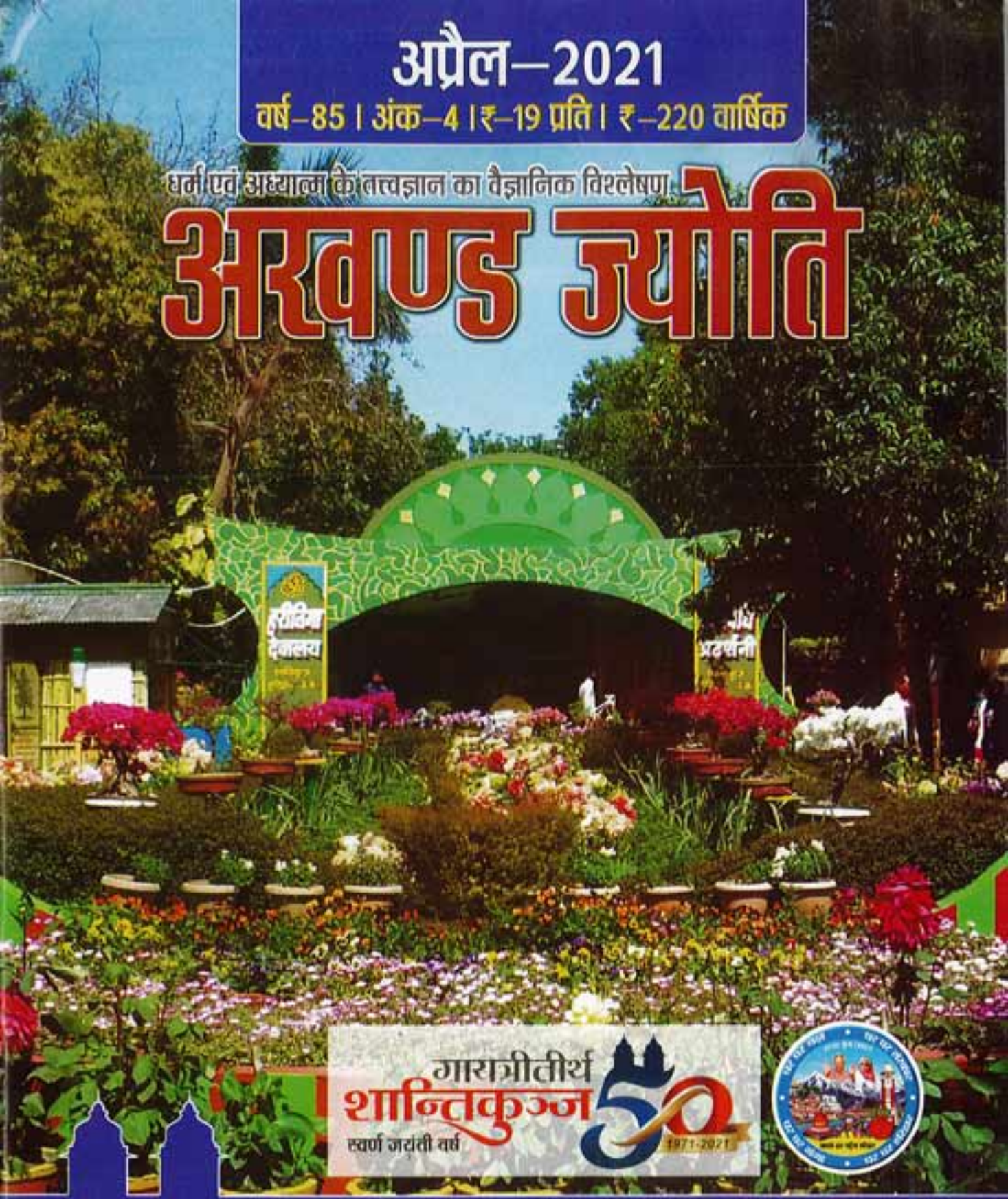

7 धार्मिकता से आध्यात्मिकता की ओर
31 ब्रह्मज्ञान की अनुभूति
35 ईमानदारी एक जीवनशैली
52 फूलों का विचित्र संसार

सत्य का तथ्य

सत्य बोलना चाहिए, पर सत्य बोलने से पहले सत्य की व्यापकता और उसके तत्त्व ज्ञान को जान लेना चाहिए; क्योंकि देश-काल और पात्र के भेद से बात को तोड़-मरोड़कर या आलंकारिक भाषा में कहना पड़ता है। धर्मग्रंथों में मामूली से कर्मकांड के फल बहुत ही बढ़ा-चढ़ाकर लिखे गए हैं। जैसे गंगा स्नान से सात जन्मों के पाप नष्ट होना; व्रत-उपवास रखने से स्वर्ग मिलना; गोदान से वैतरणी तर जाना; मूर्तिपूजा से मुक्ति प्राप्त होना, यह सब बातें तत्त्व ज्ञान की दृष्टि से असत्य हैं; क्योंकि इन कर्मकांडों से मन में पवित्रता का संचार होना और बुद्धि का धर्म की ओर झुकना तो समझ में आता है, पर यह समझ में नहीं आता कि इतनी सी मामूली क्रियाओं का इतना बड़ा फल कैसे हो सकता है? यदि होता तो योग-यज्ञ और तप जैसे महान साधनों की क्या आवश्यकता रहती? टके सेर मुक्ति का बाजार गरम रहता। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या वे धर्मग्रंथ झूठे हैं? क्या उन ग्रंथों के रचयिता महानुभावों ने असत्य भाषण किया है। नहीं, उनके कथन में भी रत्ती भर झूठ नहीं है और न उन्होंने किसी स्वार्थ-बुद्धि से असत्य भाषण किया है। उन्होंने एक विशेष श्रेणी के अल्प बुद्धि के अविश्वासी, आलसी और लालची व्यक्तियों को, उनकी मनोभूमि परखते हुए एक खास तरीके से आलंकारिक भाषा में समझाया है। ऐसा करना अमुक श्रेणी के व्यक्तियों के लिए आवश्यक था, इसलिए धर्मग्रंथों का वह आदेश एक सीमा में सत्य ही है।

— पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य

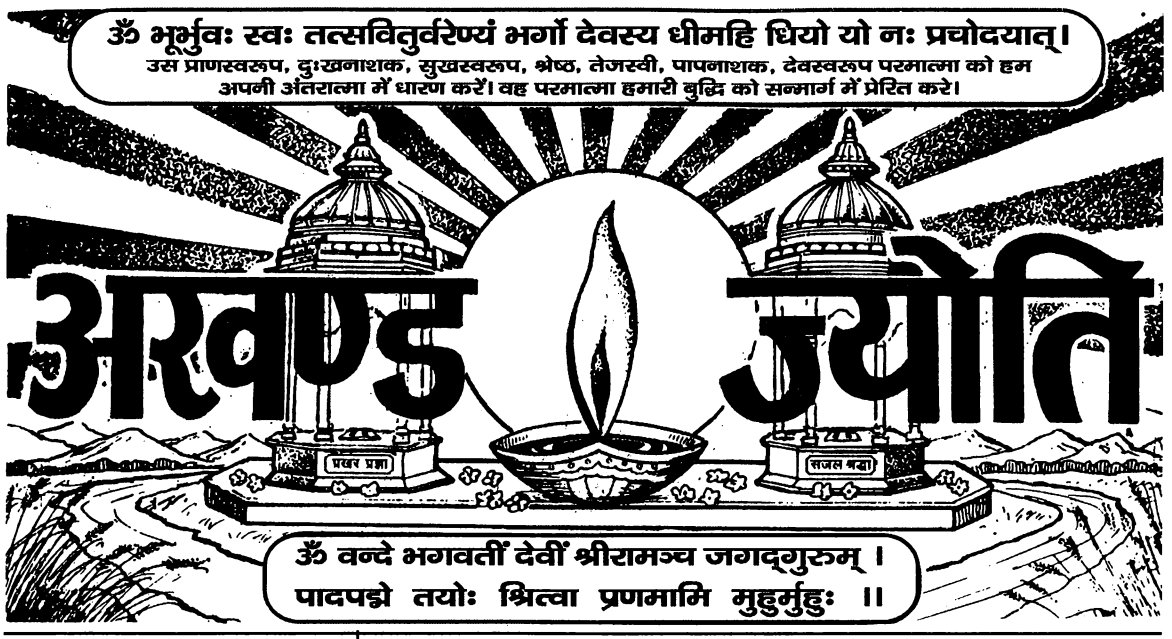

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अपनी अंतरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करे।

अखण्ड ज्योति

प्रखर प्रज्ञा सजल श्रद्धा

ॐ वन्दे भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940
2400865, 2402574
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक

वर्ष	: 85
अंक	: 04
अप्रैल	: 2021
चैत्र-वैशाख	: 2077-78
प्रकाशन तिथि	: 01.03.2021

वार्षिक चंदा

भारत में	: 220/-
विदेश में	: 1600/-
आजीवन (बीसवर्षीय)	
भारत में	: 5000/-

प्रार्थना

प्रार्थना का अर्थ याचना नहीं होता। अपनी मनोकामनाओं की सूची, उसकी फेहरिस्त बनाकर भगवान के सामने रख देने को प्रार्थना का नाम देने वाले, भक्ति के मर्म को अभी जान ही नहीं पाए हैं। प्रार्थना तो परमेश्वर के हाथों में अपने अस्तित्व को बिना किसी शर्त के सौंप देने का नाम है। स्वयं को परमात्मा के हाथों में सौंप देने के बाद, अंतस् से जो उद्गार बहकर निकलते हैं, वो प्रार्थना के रूप में जाने जाते हैं। भक्ति के शिखर पर पहुँचने पर ही प्रार्थना बह पाती है। प्रार्थनापूर्ण हृदय ही इस जगत का सबसे सुंदर, सबसे मोहक पुष्प है। वही भक्ति का हिमालय है, उसके पार-उससे परे कुछ भी नहीं है। वासनाओं से दूषित विचारों को प्रभु के सामने व्यक्त करना, ये माँगना, वो माँगना—प्रार्थना नहीं कहलाता है।

प्रार्थना का अर्थ मुकद्दर को जीतने की याचना भगवान तक पहुँचाना नहीं है, बल्कि प्रार्थना का अर्थ तो इस जीवन के रूप में हमें मिले इस सौभाग्य का धन्यवाद भगवान तक पहुँचाना है। सच्ची प्रार्थना तो हमारे अस्तित्व का उत्सव ही है। हमें मिले इस अवसर के लिए हम भगवान को धन्यवाद देते हैं और ऐसा करने पर एक अहोभाव हमारे अंतस् में जन्म लेता है, एक कृतज्ञता का भाव हमारे हृदय में विकसित होता है। कृतज्ञता के इस भाव को भगवान तक पहुँचाना ही प्रार्थना है। प्रार्थना एक तरह से स्वयं को ईश्वर के हाथों में समर्पित कर देने का नाम है। प्रार्थना जब सच्चे, निर्मल, निष्कपट हृदय से की जाती है तो निश्चित रूप से परिणाम लाती है। हमारा अस्तित्व ईश्वरीय योजना को समर्पित है—ऐसी भाव दशा ही सच्ची प्रार्थना है। ❑

'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

विषय सूची

- प्रार्थना — 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  वैज्ञानिक अध्यात्म का सामयिक प्रतिपादन — 5
- धार्मिकता से आध्यात्मिकता की ओर — 7
- ऐसी हो ईश्वर को पाने की आकुलता — 9
- **पर्व विशेष**
  हनुमान के रोम-रोम में राम — 11
- प्रकृति का अनुपम उपहार हैं फूल — 13
- जल संरक्षण के लिए उठते अभिनव कदम — 15
- बच्चों को संस्कार दें — 18
- भगवद्भक्त संत एकनाथ — 20
- देश के सर्वांगीण विकास की आवश्यकता — 21
- मुस्कराते रहो — 23
- औषधीय गुणों से युक्त वनस्पतियाँ — 24
- आत्मसम्मान को ऐसे बढ़ाएँ — 26
- संत शिरोमणि नामदेव — 28
- ब्रह्मज्ञान की अनुभूति — 31
- प्रभावी समय प्रबंधन — 33
- ईमानदारी एक जीवनशैली — 35
- **चेतना की शिखर यात्रा—223**
  गायत्री योग का प्रवर्तन — 39
- जल के अनगिनत प्रयोग — 42
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—144**
  दृष्टिबाधित विद्यार्थियों पर एक महत्त्वपूर्ण शोध — 44
- सोच-समझकर करें वाणी का प्रयोग — 46
- प्लास्टिक की खोज की कहानी — 48
- **युगगीता—251**
  क्रूर कर्मों के कर्त्ता होते हैं आसुरी व्यक्तित्व — 50
- फूलों का विचित्र संसार — 52
- देवतास्वरूप भाई परमानंद — 54
- **परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी—1**
  परिव्राजक परंपरा का पुनर्जीवन (पूर्वार्द्ध) — 56
- **विश्वविद्यालय परिसर से—190**
  पर्यावरण एवं विश्वशांति का सूत्रधार बना विश्वविद्यालय — 62
- **अपनों से अपनी बात**
  इस वर्ष करें एक ऐतिहासिक अनुष्ठान — 64
- नवरात्र-साधना की फलश्रुति (कविता) — 66

आवरण पृष्ठ परिचय

वसंत का आगमन हरीतिमा देवालय की एक झाँकी

अप्रैल-मई, 2021 के पर्व-त्योहार

शनिवार	03 अप्रैल	शीतला सप्तमी	मंगलवार	27 अप्रैल	हनुमान जयंती
बुधवार	07 अप्रैल	पापमोचनी एकादशी	शुक्रवार	30 अप्रैल	गणेश चौथ
सोमवार	12 अप्रैल	सोमवती अमावस्या	शुक्रवार	07 मई	वरूथिनी एकादशी
मंगलवार	13 अप्रैल	**नवरात्र आरंभ/ आनंद संवत्सरारंभ**	शुक्रवार	14 मई	परशुराम जयंती/ अक्षय तृतीया
गुरुवार	15 अप्रैल	**गणगौर**	सोमवार	17 मई	आद्यशंकराचार्य जयंती
रविवार	18 अप्रैल	सूर्य षष्ठी	मंगलवार	18 मई	सूर्य षष्ठी
बुधवार	21 अप्रैल	**रामनवमी**	रविवार	23 मई	मोहिनी एकादशी
शुक्रवार	23 अप्रैल	कामदा एकादशी	मंगलवार	25 मई	नृसिंह जयंती
रविवार	25 अप्रैल	महावीर जयंती	बुधवार	26 मई	बुद्ध पूर्णिमा

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** ***—संपादक***

विशिष्ट सामयिक चिंतन

वैज्ञानिक अध्यात्म का सामयिक प्रतिपादन

आज मानव समुदाय इस पृथ्वी पर एकछत्र राज्य करते हुए नजर आते हैं; क्योंकि अन्य प्राणियों की तुलना में हमारे भीतर परस्पर सहयोग एवं सहकार की क्षमता कई गुना ज्यादा है। एक हाथी को एक अकेले व्यक्ति के द्वारा परास्त कर पाना संभवतया संभव न हो, परंतु 15-20 लोग मिलकर उसको एक रस्से में बाँधने का कार्य सहजता से कर लेते हैं। स्पष्ट है कि इनसान की शक्ति इनसानियत में सन्निहित है।

विगत दिनों में हुए शोध इस ओर इशारा करते हैं कि इनसान के भीतर उपस्थित यह इनसानियत की ताकत इसलिए जन्म ले सकी; क्योंकि हम मिलकर मिथकों में, रूपकों में, कहानियों, गाथाओं में विश्वास कर सकते हैं। कवि की कल्पनाएँ हों या चित्रकारों की अभिव्यक्तियाँ, नाटककारों के नाट्य रूपांतरण हों अथवा संगीतकारों की संगीत लहरियाँ—इन सभी में इन मिथकों की उपस्थिति का एक सशक्त प्रमाण हमें मिल ही जाता है। सामान्य रूप से हम इन मिथकों की उपस्थिति का और उस उपस्थिति के हमारे जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव का अनुमान नहीं लगा पाते हैं, पर ध्यान से देखें तो यह प्रभाव अत्यंत ही ज्यादा कहा जा सकता है।

लोग काल्पनिक विश्वास के आधार पर युद्ध लड़ बैठते हैं, धर्मस्थलों का निर्माण कर बैठते हैं। काल्पनिक पात्रों पर आधारित फिल्में लोगों के जीवन को अनवरत प्रभावित करती नजर आती हैं। काल्पनिक खुशी को पाने की दौड़ में लोग ज्यादा-से-ज्यादा सामान खरीदते नजर आते हैं और ऐसा इसलिए; क्योंकि टीवी पर निरंतर दिखाए जाने वाले विज्ञापन हमें यह भरोसा दिलाते नजर आते हैं कि ये सामान और उनका संग्रहण मनुष्य की खुशी का आधार हैं।

वर्तमान समय में एक ऐसा ही महत्त्वपूर्ण क्षेत्र एवं विषय वैज्ञानिक मिथकों को माना जा सकता है। भले ही व्यक्ति अंतरिक्ष विज्ञान से अपरिचित हो, स्पेस तकनीकी के विषय में और नाभिकीय विज्ञान के विषय में उसका ज्ञान अल्प या शून्य ही क्यों न हो, साई-फाई या वैज्ञानिक मिथकों पर आधारित फिल्में जैसे—मैट्रिक्स, स्टारवार, टर्मिनेटर, अवतार को देखकर अनेकों उसी काल्पनिक दुनिया को सत्य मानकर उसी आधार पर जीवन का मूल्यांकन करते नजर आते हैं। इससे यह भी सिद्ध होता है कि वैज्ञानिक मिथकों को अपने प्रस्तुतीकरण में कुछ और गांभीर्य और जिम्मेदारी की आवश्यकता है।

वैज्ञानिक मिथकों का इतनी तीव्रता के साथ मानवता को नियंत्रित करने के पीछे का एक प्रमुख कारण यह है कि वर्तमान युग ही वैज्ञानिक प्रगति का युग है। इसलिए ऐसे विषयों पर मनुष्य की काल्पनिक पकड़ तुरंत बन जाती है। आज के वैज्ञानिक प्रगति के युग में एक प्रश्न या यों कहें कि एक चिंता जो अनेकों को व्यथित करती नजर आती है, वह है रोबोटों या मशीनों द्वारा इतनी बुद्धि या चेतना विकसित कर लिए जाने की कि वे मनुष्य को पददलित करके उसके ऊपर साम्राज्य स्थापित न कर बैठें।

इसीलिए ऐसे शोधपत्रों, आलेखों, फिल्मों की संख्या बढ़ गई है, जहाँ ऐसे विश्व का चित्रांकन किया जाता है, जिसमें मनुष्य एक साइबर स्पेस में कैद हो गया है और जो भी कुछ घट रहा है, वो इसलिए घट रहा है; क्योंकि उसे कोई अतिविकसित मशीन एक कंप्यूटर एल्गोरिदम के माध्यम से नियंत्रित कर रही है।

यदि ध्यान से देखें तो इस चिंतन के पीछे का भी जो आधार है, वो किसी हद तक भारतीय वैदिक चिंतन या वेदांतिक चिंतन की मूल जिज्ञासा की ओर ही इशारा करता है। वैज्ञानिक मिथकों के अनुसार हम लोग एक ऐसे कृत्रिम या आभासीय बुलबुले के अंदर बंद हैं, जिसे सिर्फ तब तोड़ा जा सकता है, जब हमारे भीतर का मूलस्वरूप जाग उठे। उसके जागते ही मैट्रिक्स ट्रिलजी का नायक नियो, उस कृत्रिम व्यवस्था को तोड़ पाने में सफल हो जाता है। कुछ ऐसा ही ट्रूमेन शो में ट्रूमेन नामक पात्र के नाम के साथ भी घटता है।

यदि वेदांत के मूल चिंतन की ओर जाएँ तो आखिर वेदांत भी तो यह ही कहता है कि 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या' और 'अहं ब्रह्मास्मि' का बोध होते ही ये माया के आवरण ढीले पड़ जाते हैं और हमारी, हमारे मूलस्वरूप में प्रतिष्ठा हो जाती है। वेदांत कहता है कि भले ही माया के आवरण हमें घेरे हुए हों तब भी हमारे आत्यंतिक अनुभव हमें इस जाल से बाहर निकलने की सतत प्रेरणा देते हैं; क्योंकि हम वहाँ पर भी उन अनुभवों की सत्यता को अनुभव करते हैं।

इन सभी कथाओं के पीछे कहीं गहराई में यह भय मनुष्य के मन में व्याप्त नजर आता है कि वैज्ञानिक प्रगति, इनसान की वैयक्तिकता को नष्ट कर सकती है। ऐसा सोचने के पीछे का मूल कारण यह ही है कि हम विज्ञान और अध्यात्म को दो विपरीत धाराओं के रूप में देखते एवं अनुभव करते रहे हैं; जबकि सत्य तो यह है कि ये दोनों एकदूसरे के पूरक हैं—विरोधाभासी नहीं। इसी सोच को पुष्टि देते हुए परमपूज्य गुरुदेव ने वैज्ञानिक अध्यात्म जैसा युगांतरकारी चिंतन प्रदान किया और उसी सोच पर ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान जैसे प्रतिष्ठान की स्थापना भी की।

अध्यात्म और विज्ञान, दोनों का समन्वय करके दोनों के शाश्वत स्वरूप का सरल एवं सुबोध प्रस्तुतीकरण एवं प्रमाणीकरण करके परमपूज्य गुरुदेव ने एक ऐसा युग पुरुषार्थ संपन्न कर दिखाया, जिसका अन्यत्र उदाहरण देख पाना संभव ही नहीं हो पाता है। वे स्वयं भी अपना जीवन एक जीती-जागती प्रयोगशाला के रूप में जीते रहे तथा अध्यात्म साधनाएँ पूर्णत: विज्ञानसम्मत हैं, यह उन्होंने अपने जीवन को जीकर प्रमाणित किया।

इसी सोच को केंद्र में रखकर उन्होंने कणाद ऋषि की तपस्थली के क्षेत्र में ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की स्थापना की। इस संस्थान में वैज्ञानिक परीक्षणों व अनुसंधानों का क्रम सन् 1979 से प्रारंभ हुआ। परमपूज्य गुरुदेव के आह्वान पर वहाँ दुर्लभ ग्रंथों से सुसज्जित एक ऐसा ग्रंथालय विनिर्मित किया गया, जिसमें विज्ञान व अध्यात्म के समन्वयात्मक प्रतिपादन करने वाले शोध ग्रंथों का एवं विशिष्ट पत्रिकाओं-पुस्तकों का संकलन विश्वभर से मँगाकर किया गया।

युग-परिवर्तन के नए आयामों को स्थापित करना, विज्ञान की सहायता से श्रेष्ठता के समर्थन एवं भविष्य निर्माण के लिए सुदृढ़ आधार तैयार करना ही इस शोध संस्थान का उद्देश्य रखा गया था। इस शोध संस्थान को गति एवं दिशा प्रदान करने के लिए एक से बढ़कर एक उच्चस्तरीय चिकित्साशास्त्री एवं अन्य विद्याओं के विशेषज्ञ जुड़ते चले गए और एक विश्वस्तरीय प्रयोगशाला यहाँ पर स्थापित हो गई, जहाँ गायत्री मंत्र, यज्ञ, ध्यान इत्यादि विषयों पर गंभीर शोधों का कार्य संपन्न किया गया। आज के इस वैज्ञानिक प्रगति के युग में यह एक सामयिक तथा युगांतरकारी प्रयोग कहा जा सकता है। ❑

ऋषिप्रवर शिष्यों को वाल्मीकि जी की महर्षि बनने की कथा सुना रहे थे। कथा सुन एक शिष्य के मन में प्रश्न उठा। वह पूछने लगा—"गुरुवर! गुरुकुल की परंपरानुसार हम नित्य क्रम में वेदोक्त पूजा-उपासना का क्रम अपनाते हैं, तब भी कुछ आध्यात्मिक प्रगति होती दिखाई नहीं पड़ती। तब केवल 'मरा-मरा' का जाप करने से उनको परमपद की प्राप्ति कैसे हुई?"

ऋषि मुस्कराए और बोले—"वत्स! श्रद्धा एवं आस्था अंत:करण की मूल प्रवृत्तियाँ हैं, पर ये तभी फलदायी होती हैं, जब ये विधेयात्मक हों। अचल श्रद्धा व अडिग विश्वास हो तो मिट्टी की मूर्ति भी एकलव्य को विद्या प्रदान कर सकती है। उपासना व कर्मकांड का महत्त्व तभी तक है, जब तक कि उसके साथ भावनात्मक परिष्कार की प्रक्रिया जुड़ी हो अन्यथा सिर्फ दिखावे के प्रयोजन से कुछ सार्थक लाभ मिल पाना संभव नहीं है।"

धार्मिकता से आध्यात्मिकता की ओर

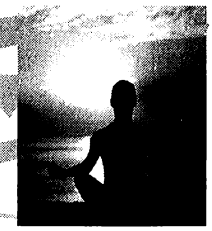

अध्यात्म को जीवन क्रम में एक उचित स्थान मिले। यह अत्यंत आवश्यक है। प्राय: अध्यात्म के नाम पर कुछ धार्मिक कर्मकांड एवं चिह्नपूजा को करते हुए, मन में एक झूठा संतोष पाल लिया जाता है कि हमने अपना कर्त्तव्य पूरा कर लिया और कुछ तो इतने भर को अपनी विशिष्ट उपलब्धि मानते हुए, धार्मिक-आध्यात्मिक होने का दर्प-दंभ पाल बैठते हैं तथा दूसरों को भी इसकी लाठी से हाँकते फिरते हैं कि आध्यात्मिक कायाकल्प तभी होगा, जब ऐसा करोगे अन्यथा कोई गति नहीं।

सत्य यह है कि अध्यात्म का मात्र धार्मिक कर्मकांड से कुछ अधिक लेना-देना नहीं। धार्मिक कर्मकांडों का अध्यात्म से गहरा संबंध होते हुए भी वे स्वयं में तब तक पर्याप्त नहीं, जब तक कि इनको इनके मूल में निहित भाव के साथ न संपन्न किया जाए अन्यथा धर्म-अध्यात्म के नाम पर असंख्य लोगों को अपना चोला रंगकर तथा वेश-विन्यास बदलकर धार्मिक होने का स्वांग करते देखा जा सकता है, लेकिन वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में इन सबका जो योगदान रहता है, उसे नगण्य ही कहा जा सकता है।

युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव का समूचा जीवन धर्म-अध्यात्म में प्रविष्ट इन विकृतियों के परिशोधन में बीता तथा वे हर स्तर पर इसके वास्तविक स्वरूप को समझाने का प्रयास करते रहे और विचारक्रांति-अभियान, प्रज्ञा अभियान, युगनिर्माण आंदोलन के रूप में लोक-कल्याण के जन अभियान को गति देते रहे। व्यक्ति जहाँ खड़ा है, वहाँ से उसे आगे बढ़ाने का पथ प्रदर्शन करते हुए परमपूज्य गुरुदेव ने धर्म से अध्यात्म की यात्रा को संपन्न करने के तीन सोपान बताए—धार्मिकता, आस्तिकता और आध्यात्मिकता।

कर्मकांड, पूजापद्धति, साधना-प्रणाली आदि धार्मिक कर्मकांड में आते हैं। गायत्री परिवार में गायत्री महामंत्र का जप, उगते हुए सूर्य—सविता देवता की ध्यान-धारणा, गायत्री यज्ञ, नवरात्र में अलग-अलग स्तर के अनुष्ठान आदि इसके अंतर्गत आते हैं। इसमें पारिवारिक स्तर पर किए जाने वाले संस्कारों तथा सामाजिक स्तर पर मनाए जाने वाले पर्व-त्योहारों एवं उत्सवों को सामूहिक साधना के उपक्रम के रूप में जोड़ा जा सकता है, जिनके द्वारा पारिवारिक एवं सामूहिक जीवन के परिष्कार का महत्तर उद्देश्य सिद्ध हो सके।

यदि धार्मिक कर्मकांड को भावनापूर्वक एवं विधि-विधान के साथ संपन्न किया जाए तो इससे व्यक्ति एवं भाग ले रहे प्रतिभागियों का भावनात्मक परिष्कार, वैचारिक संस्कार एवं आत्मिक उत्थान होना सुनिश्चित है। गायत्री परिवार के असंख्य परिजनों के जीवन का इनके माध्यम से कायाकल्प होते देखा गया है और जहाँ इनके मर्म को समझे बिना मात्र चिह्नपूजा भर की जाती रही, तो फिर इनके अपेक्षित परिणाम से लोग वंचित ही रहे। ऐसे में मुगालता पालने की आवश्यकता नहीं कि छिटपुट पूजा के आधार पर हमने तो ईश्वर की खुशामद कर ली, अब तो हमारे ऊपर उनके अजस्र अनुदान बरस कर रहेंगे या पूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी को हमने प्रसन्न कर लिया तथा अब तो उनकी कृपा हमारे ऊपर बरस कर रहेगी।

दिव्य गुरुसत्ता एवं परमेश्वर को इतना हलका मानना हमारी सोच के दिवालियापन का ही प्रतीक माना जाएगा कि वे भी हमारी तरह खुशामद प्रिय हैं। इसको गहरे से हृदयंगम किया जाए कि उनकी दिव्य सत्ता इस विश्व-ब्रह्मांड में व्याप्त एक अनुशासन, एक बुद्धिमत्ता, सर्वांतर्यामी, एक अकाट्य विधान के रूप में विद्यमान है, जो विद्युत-प्रवाह की तरह परम चैतन्य है।

यदि हम इससे जुड़ते हैं, तो पात्रता के अनुसार इसका एक अंश प्रवाहित होना सुनिश्चित है, अन्यथा बिना जुड़े मात्र कर्मकांड करने और खुशामद करने भर से कुछ होने वाला नहीं है और यदि इस प्रवाह के साथ किसी तरह का खिलवाड़ किया जाता है, तो इसकी परिणति बिजली के नंगे तार को हाथ से छूने जैसे भयावह एवं विकराल परिदृश्य के रूप में भी सामने आ सकती है।

आश्चर्य नहीं कि व्यापक लोकहित में परमपूज्य गुरुदेव जीवनपर्यंत धर्म और अध्यात्म के वास्तविक स्वरूप पर प्रकाश डालते रहे, इसके मर्म को समझाते रहे। अध्यात्म-साधना में उपासना के साथ साधना-आराधना के तत्त्वदर्शन को हृदयंगम कराते रहे और पात्रता को विकसित करने की बात करते रहे। धर्म-अध्यात्म के नाम पर छाए कुहासे को छाँटते हुए अपने शिष्यों एवं परिवार परिकर में परिष्कृत अध्यात्म, वैज्ञानिक अध्यात्म, व्यावहारिक अध्यात्म का आलोक—वे सदा सर्वत्र बिखेरते रहे।

युगऋषि के शब्दों में धार्मिकता को सही ढंग से निभाने के बाद आस्तिकता का क्रम आता है। अनवरत, दीर्घकाल तक नैष्ठिक साधक के रूप में धार्मिक कर्मकांड, उपासना-साधना को निभाने पर आस्तिकता का आविर्भाव होता है। आस्तिकता अपने दैवी स्वरूप, आध्यात्मिक मूल, ईश्वरीय अंश, अविनाशी आत्मतत्त्व के प्रति आस्था का प्रस्फुटन है, जो व्यक्ति को अपनी अपार संभावनाओं के प्रति आश्वस्त करता है।

यह ईश्वर के दैवीय अंश के रूप में वेद ग्रंथों में वर्णित स्वयं के अमृतपुत्र होने का वह एहसास है, जिसको धारण कर व्यक्ति फिर आध्यात्मिकता की अगली कक्षा में प्रवेश करता है।

यहीं पर अध्यात्म से जुड़ी इसकी परिभाषा मूर्त होती है, चरितार्थ होती है, जो है—अपने आत्मस्वरूप की ओर मुड़ना तथा अपनी आत्मा का अध्ययन करना। तब अध्यात्म अपने पूरे अस्तित्व, अपने समग्र व्यक्तित्व एवं जीवन को समझने-बूझने तथा जीने की कवायद बन जाता है। इस तरह सच्ची धार्मिकता साधक में आस्तिकता के भाव को जगाकर अंतर्यात्रा के पथ पर आगे बढ़ाती है और व्यक्ति चेतना के शिखर की ओर आरोहण करता है, जहाँ उसे चेतना के शिखर पर परमात्मास्वरूप अपने इष्ट, आराध्य एवं सद्गुरु विराजमान दिखते हैं।

परमपूज्य गुरुदेव ने अध्यात्म के इस व्यावहारिक स्वरूप को ईश्वर में विश्वास, श्रेष्ठता और आदर्शों की पराकाष्ठा के रूप में परिभाषित किया है। इस तरह धार्मिकता से प्रारंभ साधक का नैष्ठिक प्रयास आस्तिकता से होते हुए आध्यात्मिकता के रूप में फलित होता है और व्यक्ति आत्मकल्याण के साथ लोक-कल्याण के राजमार्ग पर बढ़ चलता है तथा उसका जीवन पूर्णता के पथ पर अग्रसर होता है। ❑

ऋषि प्रचेता उच्चकोटि के साधक एवं तपस्वी थे। अथर्ववेदीय उपासना पद्धतियों का उन्हें गंभीर ज्ञान था एवं मंत्र विज्ञान के गहन अनुसंधान में उन्होंने जीवन के अनेक वर्ष समर्पित किए थे। इन गुणों के बावजूद उनके व्यक्तित्व में एक गंभीर दोष था—क्रोध। यदा-कदा उन्हें भयंकर क्रोध आ घेरता था। तब वे अपना भला-बुरा देख पाने की स्थिति में नहीं रहते थे।

एक बार वे नदी स्नान को निकले। मार्ग में उनका सामना कल्याणपाद नामक व्यक्ति से हो गया। मार्ग सँकरा था एवं वहाँ केवल एक व्यक्ति के निकलने लायक स्थान उपलब्ध था। कल्याणपाद स्वभावतया हठी व उच्छृंखल प्रकृति का युवक था। अतः उसने पीछे हटने से इनकार कर दिया।

क्रोधावेश में ऋषि ने कल्याणपाद को राक्षस बनने का अभिशाप दिया, पर राक्षस बनते ही वह ऋषि पर ही आघात कर बैठा। तपस्या की पूँजी शाप में नष्ट हो जाने के कारण ऋषि अपनी रक्षा कर पाने में असमर्थ थे और अपना जीवन गँवा बैठे। यदि शांति व बुद्धिमता से काम लिया गया होता तो ऐसी स्थिति का सामना न करना पड़ा होता।

ऐसी हो ईश्वर को पाने की आकुलता

जब सूर्यनाथ मात्र पाँच वर्ष के थे तभी उनके माता-पिता काल-कवलित हो गए। गाँव के कुछ भद्रजनों व रिश्तेदारों के सहयोग से बालक सूर्यनाथ का पालन-पोषण होने लगा। गाँव के स्कूल से शिक्षा प्राप्त करने के बाद वे अपनी पैतृक जमीन पर खेती-बारी करके अपना गुजर-बसर करने लगे। पूर्वजन्म के आध्यात्मिक संस्कार के कारण उनकी ईश्वर के प्रति नैसर्गिक अभिरुचि होने लगी थी।

रात्रि में सोते समय वे मानव शरीर की नश्वरता का विचार करते-करते, कब गहन निद्रा में चले जाते, इसका उन्हें भान भी नहीं रहता। कभी अपने घर के आँगन में बैठे-बैठे देवदुर्लभ मानव तन की सार्थकता पर वे विचार करते तो कभी रात्रि में सोते समय परमात्मा का स्मरण करते-करते उनकी आँखें भर आतीं। उन्हें ऐसा लगता मानो यह देवदुर्लभ मानव जीवन यों ही बीता जा रहा है।

वे सोचा करते कि क्या वास्तव में हमारे अंदर ही परमात्मा का वास है? क्या परमात्मा को अपने जीवन में अनुभव किया जा सकता है? यदि हाँ तो कैसे? सुना है कि बिना गुरुकृपा के ईश्वर का साक्षात्कार संभव नहीं। बिना गुरु के मार्गदर्शन के ईश्वरदर्शन संभव नहीं। अक्सर सूर्यनाथ ऐसे अगणित विचारों के प्रवाह में बहते रहते। कहते हैं कि यदि भूमि उर्वर है, तो हवा के झोकों से आकर भी यदि कोई बीज वहाँ आ गिरे तो वह बहुत जल्दी अंकुरित हो जाता है और देखते-देखते उसमें कोपलें और पल्लव उगने लगते हैं और बारिश का पानी पीकर वह नन्हा-सा पौधा भी विराट वृक्ष बनकर खड़ा हो जाता है। फिर वह फलों और फूलों से लदकर इतराने लगता है। वह उस राह में जा रहे राहगीरों को छाया और फल देकर तृप्त करने लगता है।

पूर्वजन्म के पुण्यमय, पवित्रमय संस्कार के कारण बालक सूर्यनाथ की चित्तभूमि भी बड़ी उर्वर थी। फलस्वरूप बाल्यावस्था से ही उनका ईश्वर की ओर नैसर्गिक रूप से लगाव होने लगा था, पर यदि व्यक्ति में सचमुच पात्रता हो, चित्तभूमि उर्वर हो तो ऐसे व्यक्ति को सहयोग करने को मानो प्रकृति भी पलकें बिछाए रहती है और फिर प्रकृति भी तो परमात्मा की भौतिक अभिव्यक्ति ही है सो वह भी पल-पल, पग-पग पर ऐसे सुपात्र को सहयोग करने को, उसका मार्गदर्शन करने को तत्पर रहती है।

बालक सूर्यनाथ की भगवत्प्रीति ऐसी जागी कि वे आत्मसाक्षात्कार, ईश्वरसाक्षात्कार कराने वाले सद्गुरु को पाने के लिए व्याकुल हो उठे। उसी विरह-व्याकुलता में उनके नेत्रों से इतने आँसू झरते कि उनके वस्त्र भीग जाया करते थे। आज उसी विरह-व्याकुल दशा में सूर्यनाथ गहरी निद्रा में सो रहे थे कि तभी मानो सर्वज्ञ, सर्वव्यापी ईश्वर ने उनकी आकुल-पुकार सुन ली। उन्हें स्वप्न में ऐसा महसूस हुआ मानो प्रभु उन्हें नर्मदा की ओर जाने को प्रेरित कर रहे हों, जहाँ उन्हें ईश्वर से मिलाने वाले गुरु के दर्शन होंगे। उनकी निद्रा टूट गई और वे ईश्वर की प्रेरणा से, अंत:प्रेरणा से ब्राह्ममुहूर्त में उठकर ही नर्मदा जी की ओर प्रस्थान कर गए।

तीन-चार दिनों की लंबी यात्रा के बाद वे नर्मदा जी के तट पर पहुँचे। उस समय प्रात:कालीन भगवान भास्कर अपनी दिव्य लालिमा लिए उदय हो रहे थे। उनकी स्वर्णिम रश्मियाँ नर्मदा की लहरों पर पड़ रही थीं। तभी सूर्यनाथ को उन लहरों के बीच खड़े एक परम तेजस्वी पुरुष दिखाई दिए। वे नर्मदा जी में डुबकी लगाकर अपनी अंजलि में जल भरकर भगवान भास्कर को अर्घ प्रदान कर रहे थे। अर्घ प्रदान कर वे तेजस्वी पुरुष जल से बाहर निकल ही रहे थे कि तभी उन दोनों की नजरें एकदूसरे से टकराईं। दोनों एकदूसरे को देर तक एकटक देखते रहे।

वे तेजस्वी पुरुष जल से बाहर निकले ही थे कि सूर्यनाथ उनके चरणों में गिर पड़े। मानो ईश्वरीय अंत:प्रेरणा उन्हें कह रही हो कि सूर्यनाथ जिस गुरु को पाने के लिए तुम व्यग्र थे, व्याकुल थे, वे ये ही हैं। सचमुच वे महापुरुष ईश्वर के प्रकाश में पूर्णत: नहाए हुए संत हरिदास थे, जो नर्मदा जी के तट पर एक कुटिया में रहकर ईश्वर की आराधना में लीन रहा करते थे। ऐसे महापुरुष को अपने गुरु के रूप में पाकर सूर्यनाथ अति आनंदित हुए। इस प्रकार

गुरु-शिष्य का मधुर मिलन संभव हुआ। सूर्यनाथ की सच्ची लगन देखकर संत हरिदास जी ने उन्हें अपनी कुटिया में रहने की अनुमति प्रदान कर दी।

सूर्यनाथ गुरु की सेवा में सदा तत्पर रहते। वे अपने गुरु का आज्ञापालन बड़ी निष्ठा से करने लगे। धीरे-धीरे उनकी कुटिया आश्रम में बदल गई। लोग दूर-दूर से वहाँ आने लगे। सूर्यनाथ प्रातः उठकर अग्निहोत्र की व्यवस्था करते, गुरु-सेवा करते, भोजन-प्रसाद तैयार करते, आए-गए लोगों की आवभगत करते। एक दिन उनके परम कृपालु गुरु ने कहा—"पुत्र! तुम कभी भी अपनी भूल को छिपाना नहीं, बल्कि उस भूल को पहचान कर उसे अपने जीवन से बाहर निकालते रहना। इस संसार में ईश्वर से बहुमूल्य कोई वस्तु नहीं, इसका सदा स्मरण रखना।"

वे बोले—"सदा ईश्वर का चिंतन करने से ही चित्त पवित्र होता है और चित्त के पवित्र होते ही अपने अंतस् में ईश्वर के होने की अनुभूति होने लगती है और उस अनुभूति में जो आनंद प्राप्त होता है, वह अनिर्वचनीय है, अवर्णनीय है, अतुलनीय है, अद्वितीय है। ईश्वर की अनुभूति से प्राप्त आनंद को ही परमानंद, ब्रह्मानंद आदि नामों से जाना जाता है।" सद्गुरु से दीक्षा पाकर सूर्यनाथ ने नर्मदा के तट पर रहकर वर्षों तक कठोर तप किया। वे वर्षों तक भगवान श्रीहरि के दिव्य प्रकाशमय, नीलवर्ण, मधुर छवि का ध्यान करते हुए उनकी प्रत्यक्ष अनुभूति प्राप्त कर परम आनंद को प्राप्त हुए। तब फिर वे गुरु आज्ञा से संत-समागम और भगवद् धर्म का प्रचार करने के लिए तीर्थयात्रा पर निकल पड़े।

वर्षों तक भगवद्धर्म का प्रचार करते हुए वे जन-जन के बीच धर्म, संस्कृति व भक्ति की अलख जगाते रहे। फिर गुरु की आज्ञा से वे गृहस्थ धर्म में प्रवेश कर एक आश्रम बनाकर रहने लगे। वे नित्य ब्राह्ममुहूर्त में उठकर गुरु चिंतन, ईश्वर चिंतन करते। सूर्योदय से पूर्व संध्यावंदन, ध्यान आदि करते। तत्पश्चात अग्निहोत्र करते, नित्य गीता व अन्य धर्मग्रंथों का स्वाध्याय करते। नित्य बलिवैश्व करते। गौ के लिए नित्य भोजन-प्रसाद रखते। अतिथि-अभ्यागतों का सत्कार करते। तत्पश्चात विद्वानों व भक्तों के साथ बैठकर ब्रह्मचर्चा करते। फिर सायंकाल संध्यावंदन करते हुए, रात्रि में हलका व सात्त्विक आहार लेकर अपने आराध्य का स्मरण करते हुए, ध्यान करते हुए सो जाते।

वर्ष में एक बार वे दिव्य एवं जाग्रत तीर्थों का सेवन अवश्य कर आते। इस प्रकार एक आदर्श गृहस्थ की तरह जीवनयापन करते हुए वे आजीवन लोक-कल्याण में निरत रहे। वे जन-जन में परम सिद्ध सूर्यनाथ बाबा के नाम से विख्यात हुए। ❑

सबसे बड़ा और प्रमुख काम अपने जीवन का एक ही है कि प्रस्तुत वातावरण को बदलने के लिए दृश्य और अदृश्य प्रयत्न किए जाएँ। इन दिनों आस्था संकट सघन है। लोग नीति और मर्यादा को तोड़ने पर बुरी तरह आतुर हैं। फलतः अनाचारों की अभिवृद्धि से अनेकानेक संकटों का माहौल बन गया है। न व्यक्ति सुखी है, न समाज में स्थिरता है। समस्याएँ, विपत्तियाँ, विभीषिकाएँ निरंतर बढ़ती जा रही हैं। सुधार के प्रयत्न कहीं भी सफल नहीं हो रहे। स्थिर समाधान के लिए जनमानस का परिष्कार और सत्प्रवृत्ति-संवर्द्धन, ये दो ही उपाय हैं। ये प्रत्यक्ष, रचनात्मक, संगठनात्मक, सुधारात्मक उपयोग द्वारा भी चलने चाहिए और अदृश्य आध्यात्मिक उपचारों द्वारा भी। विगत जीवन में यही किया गया है। समूची सामर्थ्य को इसी में होमा गया है। परिणाम आश्चर्यजनक हुए हैं, जो होने वाला है, अगले दिनों अप्रत्याशित ही कहा जाएगा।

—परमपूज्य गुरुदेव

पर्व विशेष

हनुमान के रोम-रोम में राम

हनुमान राम को अति प्रिय थे। वे सदा साथ रहने वाले भक्त थे। राम पंचायतन में कुटुंब की दृष्टि से तो चारों भाई तथा सीता मिलकर पाँच होते हैं, पर स्थापनाओं में हनुमान को भी रखा गया है। राम पंचायतन होते हुए भी उसके सदस्यों की संख्या पाँच से बढ़कर छह हो जाती है; जबकि हनुमान रघुवंशी नहीं थे। हनुमान जी की भक्ति की यह परम उपलब्धि है। रामावतार का निकटतम होना ही नहीं, बल्कि उसका सूत्र-संचालक भी बन जाना इसी उपलब्धि का परिचय है।

यह स्थिति उस चित्र में और भी मुखर है, जिसमें हनुमान को विशालकाय दिखाया गया है और राम-लक्ष्मण उनके दोनों कंधों पर छोटे बालकों की तरह दिखाई पड़ते हैं। तात्पर्य है कि उन उत्तरदायित्वों का वहन करना, जो राम-लक्ष्मण द्वारा निभाए गए समझे जाते हैं। हनुमान को इस साहसिक श्रद्धा का परिणाम भी व्यापक कृतज्ञता के रूप में मिला है।

भारत में पाए जाने वाले राम मंदिरों की तुलना में हनुमान मंदिरों की संख्या प्राय: दस गुना अधिक है। इसका तात्पर्य राम के प्रति अश्रद्धा नहीं, वरन हनुमान की निष्ठा के प्रति कृतज्ञता का प्रकटीकरण है। यह मान्यता या प्रतिष्ठा हनुमान को उपहार में नहीं मिली थी। इसके लिए उन्हें अपने आप को गलाना, कण-कण को जलाना पड़ा था। हनुमान ने अपने रोम-रोम में राम को बसा लिया था। 'राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम'—यह रट उनके श्वास-प्रश्वास से लगी रहती थी।

अपनी समग्र चेतना और तत्परता के साथ स्वयं को अपने इष्ट प्रभु राम के लिए नियोजित करे रहना ही उनका उद्देश्य था। उनके हृदय में कोई निजी इच्छा व महत्त्वाकांक्षा नहीं थी। एकात्म की स्थिति में निजी लिप्सा-लालसाएँ विसर्जित करनी ही पड़ती हैं। सीता को यह वस्तुस्थिति एक बार उन्होंने हृदय चीरकर दिखाई थी। राम ने अयोध्या लौटने पर गुरु वसिष्ठ के सामने अपनी समस्त सफलताओं का श्रेय हनुमान को देते हुए उन्हें भरत की तरह ही प्राणप्रिय बताया था।

यह उभयपक्षीय आत्मीयता इतनी सघन कैसे हो सकी, इसमें भावुकता का आधार जैसा कोई कारण नहीं था। मूल में उस साधना का चमत्कार था, जो इष्टदेव का ध्यान-पूजन करने तक सीमित नहीं रहती, वरन उसकी इच्छा को अपनी इच्छा या समर्पण करके अपने साधनों को उसी की पूर्ति में खपा देती है। राम पंचायतन में अन्य सदस्य वस्त्राभूषण पहने सम्मानित स्थान पर बैठे दृष्टिगोचर होते हैं, लेकिन पवनपुत्र के शरीर पर लज्जावस्त्र की तरह लँगोटी मात्र है। उन्होंने अपना स्थान सबसे नीचे भगवान राम के चरणों के समीप बैठने का बनाया है।

राम से हनुमान का संपर्क जिस दिन हुआ, उस दिन से अंत तक वे उन्हीं के छोटे-बड़े कार्यों में निरत रहे। उनके जीवन में अंत कभी आया ही नहीं, क्योंकि वे चिरजीवी हैं। उन सभी कामों की गणना करना तो कठिन है, जो उन्होंने अपने इष्ट के लिए किए, पर 5 उनमें से प्रमुख हैं। पहला—सुग्रीव को अपनी समस्त सेना राम-काज में लगाने के लिए सहमत कर लेना। दूसरा—सीता को खोजे बिना वापस न लौटने का संकल्प लेना और उसे निभाना। तीसरा—समुद्र लाँघने और लंकादहन का दुस्साहस अकेले ही करना। चौथा—लक्ष्मण को जीवित करने के लिए सुषेण वैद्य को चुराकर लाना और पर्वत समेत संजीवनी बूटी प्रस्तुत करना तथा पाँचवाँ काम—रामराज्य की स्थापना और अश्वमेध सरीखे प्रयोजनों में अंत तक लगे रहना।

ऐसे और भी कई काम हैं, जिनमें लगे रहने के कारण रामकथा के नायक 'राम से अधिक राम के दास' वाली उक्ति दोहराते हैं। अवतारी सत्ताएँ सृष्टि का संतुलन करने के अलावा एक काम अपने सहचरों को श्रेय देने का भी करती हैं। शबरी, केवट, भरत, लक्ष्मण, उर्मिला, विभीषण, रीछ, वानर, गिद्ध, गिलहरी जैसे सहयोगियों के अनुदान की चर्चा करते समय भी जन-जन की भावश्रद्धा उमड़ती है और आँखों से अश्रुधार बनकर बहती है। रामकथा में से इन प्रसंगों को हटा दिया जाए तो फिर उसमें सामान्य हलचल ही रह जाती है। उस अमृत का तो अस्तित्व ही मिट जाता

है, जिसके कारण रामकथा की महिमा गरिमा का बखान किया जाता है।

अवतारों में अनेक समानताएँ रहती हैं। हनुमान के उपरोक्त पाँचों निर्धारणों को अमल में लाने और सफल बनाने का संकल्प अपने कंधों पर लेना पड़ता है। श्रद्धा से प्रेरित इस साहस को अपनाने में कितने ही कुसंस्कारों और बाहरी दबावों और अवरोधों से उसी तरह जूझना पड़ता है; जैसा कि पवनपुत्र को त्रिजटा, सुरसा आदि से जूझना पड़ा था। राम को रोकने के लिए भी तो वे ताड़का, सूर्पनखा बनकर आई थीं। जब उत्कृष्टता के मार्ग रोके बिना वे दुष्ट शक्तियाँ जरा भी नहीं रुकतीं, तो रामभक्तों के मार्ग कैसे बचे रह सकते हैं? उनमें से प्रत्येक को अपनी लोभ-लिप्सा से ही नहीं, बल्कि उलझनों-परिस्थितियों से अपने-अपने ढंग से निपटना पड़ता है।

अग्नि परीक्षा में से गुजरे बिना सोने का खरापन भी तो सिद्ध नहीं होता। हनुमान एक सच्चे भक्त थे। उनके जीवन का लक्ष्य था प्रभु राम के चरणों में सर्वस्व समर्पण करना। वे स्वयं को समर्पित करके ही रामभक्त हनुमान कहला सके। ❑

श्रोण उच्चकुल का राजकुमार था। विलासिता के सभी साधन उसे सहज उपलब्ध थे और आमोद-प्रमोद के अतिरिक्त किसी अन्य कार्य के लिए उसके जीवन में स्थान न था। संयोगवश भगवान बुद्ध का आगमन उसके राज्य में हुआ और उसे उन्हें सुनने का अवसर मिला।

भगवान बुद्ध के सारगर्भित वचनों ने उसके व्यक्तित्व को इतना प्रभावित किया कि उसने भिक्षु बनने का निर्णय लिया। भिक्षु बनते ही उसकी जीवनचर्या में गंभीर परिवर्तन आया और कल का विलासी श्रोण, आज का उपवासी श्रोण बन बैठा। उसने अन्न-जल ग्रहण करना बंद कर दिया, एकाकी जीवन व्यतीत करने लगा। धीरे-धीरे उसका स्वास्थ्य गिरने लगा और इसकी सूचना बुद्ध तक पहुँची। बुद्ध ने श्रोण से मिलने का निर्णय किया।

बुद्ध ने श्रोण से पूछा—"वत्स! मैंने सुना है कि तुम वीणा के प्रसिद्ध वादक हो।" उत्तर हाँ में मिलने पर बुद्ध ने प्रश्न किया—"पुत्र! यदि वीणा के तार आवश्यकता से अधिक कसे हों या ढीले हों तो क्या होगा?" श्रोण ने उत्तर दिया—"प्रभु! दोनों ही स्थितियों में वीणा से संगीत निकल पाना संभव नहीं है।"

बुद्ध मुस्कराए और बोले—"श्रोण! जीवन-साधना भी वीणा के तारों के समान है। न इसे जीवन में रखने की जरूरत है और न इससे भागने की। साधना की ऊँचाइयों को पाने के लिए एक चरम से दूसरे चरम में प्रवेश करना आवश्यक नहीं है। इसका समाधान संतुलन में है, समग्रता में है।" बात का मर्म श्रोण की समझ में आ गया और उसके जीवन में दिव्य संगीत बज उठा।

प्रकृति का अनुपम उपहार हैं फूल

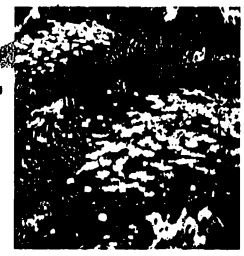

भाँति-भाँति के फूल मनुष्य को प्रकृति की ओर से दिए गए वे खूबसूरत उपहार हैं, जिन्हें वह थोड़े से श्रम के द्वारा प्राप्त कर सकता है। फूल कोमल और पवित्र होने के साथ ही सुंदर और सुगंधित भी होते हैं। इसी कारण ये सबको अपनी ओर आकर्षित भी करते हैं। फूलों की पावनता व सुगंध के कारण ही इन्हें भगवान के चरणों में चढ़ाया जाता है तथा पुष्पांजलि के रूप में इन्हें अर्पित किया जाता है।

यदि भगवान के चरणों में चढ़ाने के लिए व्यक्ति के पास पैसे न हों तब भी फूलों के अर्पण से इसकी क्षतिपूर्ति मान ली जाती है। भगवान के चरणों में पुष्पांजलि अर्पण करने के माध्यम से व्यक्ति अपनी भावनाओं को भगवान के चरणों में अर्पित करता है। फूलों का दर्शन, स्पर्श व सुगंध—ये तीनों ही व्यक्ति के मन को ताजगी, प्रसन्नता व शांति से भर देते हैं। यही कारण है कि फूलों का संपर्क व्यक्ति को मानसिक रूप से स्वस्थ करता है और नई ताजगी देता है।

यदि फूलों के बगीचे देखने जाएँ; वहाँ कई तरह के फूलों से सजी हुई क्यारियाँ देखी जाएँ तो मन सहज रूप से इनकी ओर आकर्षित हो जाता है। इन्हें तोड़कर अपने पास रखने का मन करता है और इनकी खुशबू को बार-बार ग्रहण करने का मन करता है। फूलों की इसी भीनी खुशबू से आकर्षित होकर भौंरा बगीचों में मँडराता फिरता है। रंग-बिरंगी तितलियाँ इन फूलों के संसार में विचरण करती हैं और प्रकृति की सुंदरता में चार चाँद लगाती हैं।

फूलों का महत्त्व केवल भगवान की पूजा-अर्चना तक सीमित नहीं है, बल्कि इनका औषधीय महत्त्व भी है। इनकी खुशबू से आजकल सुगंध चिकित्सा (ऐरोमाथेरेपी) भी की जाती है। देखा जाए तो फूलों में ताजगी एक दिन के लिए ही होती है। दो दिन तक भी इन्हें ताजा रखा जा सकता है, परंतु इसके बाद वे मुरझा जाते हैं। इनमें सुगंध इनके सूख जाने के बाद भी बनी रहती है; हालाँकि सूख जाने के बाद इनमें सुगंध की मात्रा थोड़ी कम हो जाती है। फिर भी इन सूखे हुए फूलों से आजकल अगरबत्तियाँ, हवन-सामग्री व कई तरह की औषधियाँ बनाई जा रही हैं।

गुलाब के फूलों से निर्मित गुलकंद की खूबियों से तो सभी परिचित हैं व साथ ही गुड़हल के फूलों की महत्ता भी लोग समझने लगे हैं। गेंदे के पीले फूल, बेला के सफेद महकते फूल, चंपा व चमेली की भीनी खुशबू वाले फूल आजकल केवल साज-सज्जा, भगवान की पूजा आदि के लिए ही उपयोग में नहीं आ रहे, बल्कि इनसे अनेक प्रकार की औषधियाँ भी बनाई जा रही हैं। इनकी खुशबू से ऐसे इत्र तैयार किए जा रहे हैं, जो सुगंध चिकित्सा में प्रयोग किए जाते हैं।

आदिकाल से फूलों को मानव समाज में विशेष महत्त्व प्राप्त है। किसी के सम्मान की बात हो या किसी के पूजन की; सजावट की बात हो या उपहार देने की या फिर किसी की मृत्यु का दुःखद समाचार हो—इन सभी अवसरों पर फूलों को प्राथमिकता दी जाती है। इस तरह फूल हमारे सुख व दुःख, दोनों ही परिस्थितियों में उपयोग किए जाते हैं। ये हमारे सुख के अवसरों को दुगना कर देते हैं और हमारे दुःख के अवसरों में दुःख को कम करते हैं।

आजकल प्लास्टिक व कपड़ों से बने हुए फूल भी बाजार में उपलब्ध हैं, जो दिखने में हमेशा एक जैसे रहते हैं; जो मुरझाते नहीं हैं, लेकिन फिर भी ये ताजे फूलों का स्थान कभी नहीं ले सकते; भले ही इनमें कितना भी कृत्रिम गंध का छिड़काव किया जाए। जो कोमलता, खुशबू, प्रसन्नता व मन को शांति ताजे फूलों से मिलती है, वह कृत्रिम फूलों से नहीं मिल सकती।

प्रकृति में फूल और फल के मध्य एक अटूट संबंध है। बिना फूल के फल पैदा नहीं होता और फल के बीज में

ही फूल के पुनः धरती पर पौधे के रूप में उगने व खिलने की संभावना छिपी होती है। हालाँकि प्रकृति में फल के पौधों से विभिन्न फूलों के पौधों की कई तरह की प्रजातियाँ जन्म लेती हैं, जो अपना बीज स्वयं निर्मित करती हैं और इन फूलों के कारण ही इनकी पहचान होती है, लेकिन हमारे समाज में फलने-फूलने को मुहावरे के साथ जोड़ा गया है, जिसका अर्थ है—जीवन में चहुँमुखी उन्नति करना। इसी कारण अक्सर घर के बड़े लोग आशीर्वाद देते समय कह देते हैं—खूब फलो-फूलो।

हमारे वैदिक ग्रंथ—ऋग्वेद में फलों एवं फूलों के संवर्द्धन का अनेक स्थानों पर वर्णन है। पहले जंगलों में ऋषियों के आश्रम फूलों व फलों से आच्छादित निकुंज कहलाते थे। आश्रमवासी परमात्मा की अनुपम कृति के रूप में पेड़-पौधों से बड़ी आत्मीयता रखते थे। फूलों व फलों से भी उनका बड़ा स्नेह रहा करता था। परमात्मा को समर्पित करने वाली वस्तुओं में इन्हें ही सर्वोत्तम समझा जाता था।

हमारी प्राचीन सभ्यताओं—मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की सांस्कृतिक विशेषताओं में भी फूलों व फलों को विशेष स्थान प्राप्त था। मथुरा, कुषाण तथा भरहुत की मूर्तिकलाओं में अनेक प्रकार के पुष्पों, वृक्षों और लताओं का दिग्दर्शन है, जो यह बताता है कि उस समय इनकी कितनी महत्ता थी। इसीलिए पहले बौद्ध मठ उद्यानों में ही स्थापित किए जाते थे।

प्राचीनकाल में माली होते थे, जिनका मुख्य कार्य पेड़-पौधों, फूलों व फलों की देख-भाल करना होता था। आज भी माली का संबोधन पेड़-पौधों व फूलों की देख-भाल करने वाले को दिया जाता है। राजपूतकाल व मुगलों के शासनकाल में भी बागवानी का बड़ा महत्त्व रहा है। पहले बड़े-बड़े राजसी उद्यान होते थे, जिनकी देख-भाल के लिए विशेष माली नियुक्त किए जाते थे। तरह-तरह के फलों व फूलों का इन उद्यानों में रोपण किया जाता था।

राजपरिवारों की प्रसन्नता के लिए इन्हें विशेष प्रकार से सजाया जाता था, जिसे देखते ही मन सहज रूप से इनकी ओर आकर्षित होता था। फूलों के प्रति मन के सहज आकर्षण का संबंध किसी जाति, वर्ण, धर्म या किसी विशेष स्थान से नहीं है, बल्कि समस्त मनुष्य जाति का मन फूलों के प्रति सहज रूप से आकर्षित होता है। यही कारण है कि संसार के प्रत्येक धर्म व संस्कृति में फूलों के प्रति गहन प्रेम प्रदर्शित किया गया है।

हिंदू धर्म में एक बाग लगाने का पुण्यफल सौ यज्ञों के फल के बराबर माना गया है। यह कथन चाहे आलंकारिक भी हो, पर मनुष्य फूलों व फलों से जितने लाभान्वित होते हैं उसे देखते हुए इस कथन का महत्त्व स्पष्ट है। आजकल फूलों की पैदावार भी रोजगार का एक साधन बन गई है।

फूलों के गुलदस्ते, फूलों की मालाएँ खरीदने के लिए आजकल विशेष दुकाने हैं और अब तो ऑनलाइन भी फूलों के गुलदस्ते मँगाने के लिए ऑर्डर किए जाते हैं। फूलों का बाजार आजकल इतना बढ़ गया है कि इनसे भाँति-भाँति की सजावट करने के लिए ऑर्डर लिए जाते हैं, जैसे—जन्मदिवसोत्सव, शादी, त्योहार इत्यादि में घरों की सजावट

दीपनाद्वा द्योतनाद्वा दानाद्वा इति देवताः।

जो स्वयं प्रकाशित रहकर दूसरों को प्रकाशित करते हैं और देने का कार्य करते हैं, वे ही देवता कहलाते हैं।

करने के लिए इनकी विशेष माँग होती है। इनके भी पैकेज होते हैं कि कम कीमत में इतनी सजावट होगी और अधिक कीमत में इतनी सजावट होगी। इस तरह फूलों की सजावट का भी एक बाजार है।

अब फूलों से चाहे आमदनी की जाए या इनका कुछ और प्रयोग किया जाए, परंतु फूल सदैव ही अपनी निर्मलता, कोमलता, पावनता व सुगंध के कारण व्यक्ति को वह प्रसन्नता देते हैं, वह खुशी व शांति देते हैं, जो व्यक्ति के मन में सहज रूप से बस जाती है। फूलों की ओर ध्यान से देख लेने मात्र से मन में ताजगी भर जाती है। भाँति-भाँति के फूल प्रकृति की सुंदरता में चार चाँद लगा देते हैं और वातावरण को अपनी खुशबू से सराबोर कर देते हैं। यही कारण है कि कवियों ने फूलों पर अपनी असंख्य कविताएँ लिखी हैं, इन्हें अनेकों ढंग से निहारा व इनका यशोगान किया है। सारांश में फूल प्रकृति का अनुपम उपहार हैं और इन्हें विशेष रूप से सहेजने की जरूरत है। ❑

जल संरक्षण के लिए उठते अभिनव कदम

धरती की जलवाहिनी नदियाँ यदि सूख रही हैं, तो इसका कारण है कि उनकी सहायक नदियों की दुर्दशा इस कदर हो गई है कि अब उनका अस्तित्व दम तोड़ता नजर आता है। वास्तव में किसी भी बड़ी नदी का स्रोत छोटे इलाकों में बहने वाली छोटी नदियाँ व गाड़-गदेरे ही होते हैं, यदि इन्हें पुनर्जीवित करने का प्रयास किया जा सके तो प्राकृतिक आपदाओं जैसे—सूखा, वनाग्नि और बाढ़ जैसी समस्याओं से छुटकारा पाया जा सकता है। ये कार्य छोटे या बड़े स्तर पर किए जा सकते हैं और इन कार्यों को पूरा करने के लिए जुट जाने वाले लोग ही इन नदियों के जलपुरोधा हैं।

आसनगंगा जिसे अब हैस्को नदी के नाम से भी जाना जाता है। यह नदी सन् 2010 में अपना अस्तित्व पूरी तरह से खो चुकी थी। यह नदी छोटी जरूर थी, लेकिन इससे 18 गाँवों की खेती-बारी और पेयजल की समस्या का समाधान होता था। इस नदी का अस्तित्व गँवाने में मुख्य कारण जो जिम्मेदार थे, वे थे—जलागमों में वनविहीनता और अत्यधिक चराई, जिसने इसकी वर्षा जल संग्रहण की क्षमताओं को समाप्त कर दिया था।

केवल यही नहीं, बल्कि देश की हजारों वर्षाजनित नदियाँ अपना अस्तित्व इन्हीं कारणों से खोती जा रही हैं। इन सभी नदियों में जलागमों में वनों के अभाव में वर्षा का पानी तेजी से बहकर नदियों में चला जाता है और मानसून में बाढ़ का कारण बनता है। वहीं दूसरी तरफ साल के अन्य महीनों में ये नदियाँ सूखे की मार झेलती हैं।

वनों के जलागम में यही बड़ा योगदान होता है कि वे वर्षाजल को भूमिगत कर जलभिदों को जल से भरते हैं और कालांतर में नदियों को सींचते हैं। ऐसे में इनका जीवित रहना दूरदृष्टिता के हिसाब से भी जरूरी होता है। जब मरणासन्न आसन नदी ने पानी की त्राहि-त्राहि मचाई और सिंचाई, घराट व पीने के पानी पर बड़े सवाल उठा दिए तो अंततः लोगों को इसके पुनर्जीवन के बारे में सोचना पड़ा।

इस नदी का मुख्य उद्गम शुक्लापुर, आशारोड़ी रेंज में जिला देहरादून में पड़ता है। इसका जलागम लगभग 44 हेक्टेयर में है और यही शुरुआत में इस नदी को वर्षा जल से सींचता रहा, लेकिन वन दबाव की विहीनता व खुली चराई ने इसकी जलागम क्षमता पर अंकुश लगा दिया। इसके निदान के लिए एक बैठक का आयोजन किया गया, जिसमें गाँव, वनविभाग व हैस्को (हिमालयन एनवॉयरेन्मेंटल स्टडीज एंड कन्जर्वेशन ऑर्गेनाइजेशन) ने भागीदारी की, जिसमें प्रकृति, विज्ञान व पारंपरिक दृष्टि से नदी के लिए चर्चा की गई और इसमें यह माना गया कि नदियों के पानी के जलागम ही वो प्राकृतिक बाँध हैं, जिनसे आसनगंगा का अस्तित्व बचाया जा सकता है।

यह सोचा गया कि आसनगंगा में पानी की वापसी का मंत्र इसके जलागम की क्षमताओं को बेहतर करके ही संभव है; चूँकि वनों के जलागम की वापसी समय लेगी, इसलिए जलागम में वर्षा के पानी को एकत्र करने और रोकने के रास्ते जुटाने होंगे। यह सिर्फ प्राकृतिक दृष्टि से ही जरूरी नहीं था, बल्कि मानवजाति के उत्थान व जीव-जगत के जीवन के लिए भी महत्त्वपूर्ण था। चूँकि पानी ही जीवन का स्रोत होता है, ऐसे में बड़ी नदियों की रक्षा के लिए इनकी सहायक नदियों को सुरक्षित करना ही सबसे बड़ा उपाय हो सकता है और इसके लिए सबने निर्णय किया कि हमें सशक्त कदम उठाने होंगे।

आसनगंगा नदी का अस्तित्व बचाने हेतु की जाने वाली बैठक में यह निर्णय भी लिया गया कि वनविभाग इसकी कार्ययोजना तैयार करेगा, जिसका आधार तकनीकी कौशल होगा। गाँव इसके संरक्षण व इसके लिए कार्य करने में भागीदारी करेंगे। इस तरह निर्धारित लक्ष्य के अनुसार—यह सामूहिक योजना शुरू हुई, जिसमें 44 हेक्टेयर भूमि में 4000 जलछिद्र, 10 बड़े तालाब और 181 चेकडैम बनाए गए। इन सब प्रयासों से एक ही बारिश में 18 लाख लीटर जल को बचाया गया और प्रकृति ने भी इसमें पूरा साथ दिया।

अब एक मानसून चक्र ने ही इसमें 19 करोड़ लीटर पानी भूमिगत किया। इन प्रयासों व प्रकृति के सहयोग के परिणामस्वरूप नदी का डिस्चार्ज 110 लीटर प्रतिमिनट से

बढ़कर 920 लीटर प्रतिमिनट हो गया और इसने लगभग 18 गाँवों की खेती-बारी में अपना सहयोग देने के साथ ही अन्य जलस्रोतों जैसे कुआँ, बावड़ी, हैंडपंप आदि को भी जलजीवन दिया।

इसके अलावा पिछले 10 सालों में यहाँ कभी भी वनाग्नि की घटना नहीं हुई। अगर जमीनी रूप से इसके कारणों की जाँच की जाए तो इसके मूल कारणों में समुचित नमी व सतही छोटी वनस्पतियों का हरा-भरा रहना था, जिसने कभी भी अग्नि को उस स्तर तक फैलने ही नहीं दिया, जिससे वनाग्नि की घटना घटे। आसनगंगा नदी का अस्तित्व बचाने की यह पूरी घटना जब चारों ओर फैलने लगी, तो देश के अन्य कोनों में वर्षा को जलछिद्रों के माध्यम से बाँधने का काम शुरू हो गया। पद्मभूषण श्री अनिल जोशी की इसमें प्रमुख भूमिका रही।

नदियों में जलवापसी के उल्लेखनीय प्रयासों में अपना योगदान देने वाले एक जलपुरोधा ईश्वरदत्त जोशी हैं, जिन्होंने जब जैराज गाँव (पौड़ी) के ग्रामीणों से उन क्षेत्रों में व्याप्त जलसंकट की समस्याओं पर बातचीत की, तो उन्होंने यह माना कि प्राकृतिक रूप से ही पानी की वापसी सतत और स्थायी हो सकती है। इसके लिए उन्होंने निश्चय किया कि जैराज बांसीरौला गाड़ जो कि रामगंगा का सहायक गदेरा है, को पुनर्जीवित करना एक उत्तम उपाय है।

इस कार्य की शुरुआत में जलागम क्षेत्र में जलछिद्र, तालाब व जलरोधक बनाए गए व विभिन्न प्रजातियों के हजारों पौधे भी लगाए गए। इस पूरे कार्य में स्थानीय ग्रामीणों ने अपना खूब सहयोग दिया। यहाँ 10 हेक्टेयर जलागम क्षेत्र में 3000 जलछिद्र, 6 तालाब, 25 जलरोधक बनाए गए व 30 मिमी. की बारिश में लगभग 25 लाख लीटर जल भूमिगत किया गया, जिससे बांसीरौला का डिस्चार्ज 9 लीटर प्रतिमिनट से बढ़कर 30 लीटर प्रतिमिनट हो गया और इसने लगभग 50 गाँवों की कृषि को जीवन दिया।

एक अन्य जलपुरोधा रमनकांत त्यागी हैं, जिन्होंने सन् 2004 में ही जल की समस्याओं से संबंधित कार्य करने का दृढ़ निश्चय किया। इसके लिए इन्होंने 'नीर फाउंडेशन' की नींव रखी। इन्होंने काली नदी का अस्तित्व बचाने का निश्चय किया तो इसके पहले हैस्को नदी का भ्रमण किया और इसके वैज्ञानिक पहलुओं को जानने की कोशिश की और फिर नए सिर से रणनीति तैयार की।

इस तैयारी को करने में नदी के उद्गम क्षेत्र में जलछिद्र व तालाब बनाने में अंतवाड़ा, मुजफ्फरनगर के ग्रामीणों द्वारा सामूहिक भागीदारी सराहनीय है। 145 बीघा जमीन छोड़ने के साथ ही नदी की मुख्य धारा में सफाई व अन्य कार्यों में स्थानीय ग्रामीणों द्वारा श्रमदान भी किया गया। काली नदी के जलागम क्षेत्र में 120 घनमीटर के 300 जलछिद्र, 450 घनमीटर के 4 तालाब बनाए गए, जिनकी जल संभारण क्षमता 54 लाख लीटर है। गत वर्ष के मानसून सत्र में अंतवाड़ा में कुल 1270 मिमी. बारिश हुई, जिससे कि लगभग 12 करोड़, 70 लाख लीटर वर्षा-जल भूमिगत हुआ। इस तरह आज काली नदी अपने एक नए स्वरूप में है।

जम्मू के रियासी जिले की सबसे बड़ी चुनौतियों में पानी ही सबसे मुख्य मुद्दा रहा। वहाँ 100 से अधिक गाँवों तक पानी का पहुँचना ही सबसे बड़ी दिक्कत है और इसका कारण भी वही है—वनविहीनता और अन्य वन दबाव; चूँकि ये वन ही वे माध्यम थे, जो चिनाब नदी की सहायक छोटी नदियों, गाड़-गदेरों को सींचते थे और अब इन वनों के उजड़ने से समय के साथ-साथ धीरे-धीरे वहाँ गाँव-घर के जलस्रोत भी खतम होने शुरू हुए। तब रियासी जनपद की जिला विकास आयुक्त इंदु कंवल चिब ने चिनाब नदी की जलवापसी का जिम्मा अपने ऊपर लिया।

ग्रामीणों की जल-समस्या से निपटने के लिए उन्होंने प्राकृतिक रास्तों को तलाशा और इसी खोज में वो हैस्को ग्राम शुक्लापुर पहुँचीं, जहाँ आसनगंगा के स्वरूप व हैस्को नदी के विज्ञान का अध्ययन कर रियासी जनपद में 153 स्थानीय ग्राम पंचायतों, वनविभाग और जिले के अन्य संबंधित अधिकारियों के साथ कई चरणों में इस मुद्दे पर बैठकें आयोजित कीं और इससे संबंधित जल रणनीति बनाई। फिर सभी ने मिलकर वर्षाजनित धारों-बावड़ियों व अंतत: नदी के पुनर्जीवन पर कार्य शुरू किया। धीरे-धीरे इस कार्य में 100 से अधिक गाँव जुड़े।

इस कार्यप्रणाली के तहत पूरे रियासी क्षेत्र में लगभग 467 हेक्टेयर भूमि में 14 हजार जलछिद्रों का निर्माण किया गया, जिनकी कुल क्षमता 14 करोड़ लीटर जल संभारण की है। इन सब प्रयासों से बारिश के पानी को तत्काल बह जाने से रोका गया, जिसने स्थानीय बावड़ियों व धारों को पानी मिलने के साथ ही चिनाब तक पानी पहुँचाने में

भागीदारी की। इनके सामूहिक प्रयासों को केंद्र सरकार द्वारा चलाए जा रहे जल संरक्षण अभियान का भी साथ मिला। इन सब प्रयासों ने वर्षा के जल को तत्काल बहने से रोका। इसमें धारों व बावड़ियों को तो सिंचित किया गया, साथ ही नदी को भी जल मिला।

एक अन्य जलपुरोधा रघुबीर सिंह कुंडवाल हैं, जो पिछले 28 वर्षों से उत्तराखंड राज्य के गाँवों में सामाजिक कार्यों को करने में जुटे हुए हैं। ये गढ़वाल क्षेत्र के दो गाँवों मैठाणा और मेदनपुर में नदी वापसी के लिए संकल्पित हुए। इसके लिए सर्वप्रथम यहाँ के स्थानीय गाड़ों क्रमशः नारगिड़ व पनगीट पर कार्य की पहल हुई। ये दोनों गदेरे मंदाकिनी नदी के सहायक गदेरे हैं। इस क्षेत्र में ग्रामीणों द्वारा जलसंकट की बात सामने आई। इसके अलावा यहाँ चीड़ के जंगल होने के कारण हर साल वनाग्नि की घटनाएँ भी होती थीं, जो गाँव को सीधे तौर पर प्रभावित करती थीं।

रुद्रप्रयाग जिले के इन दोनों गाँवों में 5 हेक्टेयर जलागम क्षेत्रों में 3000 जलछिद्र, 10 तालाब, 20 जलरोधक बनाए गए, जो एक बार में 30 मिमी. बारिश में 30 लाख लीटर वर्षा-जल एकत्रित कर सकते हैं। साथ ही यहाँ कचनार, बीजू, आम, आँवला, तेजपत्ता, बड़ी इलायची, कागजी नीबू जैसी विभिन्न प्रजातियों के हजारों पौधे लगाए गए। जलप्रपातों में जल-प्रवाह में वृद्धि के साथ ही मैठाणा के नारगिड़ गाड़ का डिस्चार्ज 9.70 लीटर प्रतिमिनट और मेदनपुर के पनगीट गाड़ का डिस्चार्ज 10 लीटर प्रतिमिनट था, जो बढ़कर क्रमशः 25 लीटर प्रतिमिनट व 20 लीटर प्रतिमिनट हो गया और इसने लगभग 10 गाँवों की खेती-बारी से लेकर पेयजल में भी वृद्धि की।

इस तरह हमारे देश में नदियों का अस्तित्व बचाने के जो उल्लेखनीय कार्य हुए हैं, वो प्रशंसनीय हैं। समय-समय पर जलपुरोधा के रूप में जो भी नायक-नायिकाएँ हमारे सामने आते हैं, वो कुछ ऐसा कर जाते हैं व अन्य स्थानीय लोगों को कुछ करने के लिए इस तरह से प्रेरित कर देते हैं, जिससे असंभव दिखने वाला कार्य भी संभव हो जाता है और लोगों की समस्याओं का समाधान होता है। ❑

पंडित रामसेन शास्त्री दर्शन के प्रकांड विद्वान थे। दो व्यक्ति उनके पास शिक्षा ग्रहण करने के उद्देश्य से पहुँचे। पहला दर्शनशास्त्र में स्नातक उपाधि प्राप्त था, पर अपने ज्ञान के अभिमान में चूर था। दूसरा प्राथमिकी उत्तीर्ण था, पर स्वभाव से विनम्र एवं ग्रहणशील था। दोनों से चर्चा करने के उपरांत शास्त्री जी ने प्राथमिकी उत्तीर्ण को शिष्य के रूप में स्वीकार कर लिया।

उनके मित्र ने उनसे पूछा—"इस व्यक्ति का ज्ञान अल्प है, इसे उपयुक्त योग्यता देने में आपका बहुत समय जाएगा, फिर इसका चयन क्यों?" शास्त्री जी बोले—"मित्र! पहला व्यक्ति उस भरे प्याले के समान था, जिसमें कुछ नया स्वीकारने की न मनःस्थिति थी और न परिस्थिति, पर यह व्यक्ति एक रिक्त पात्र की भाँति है, इसमें जो भी डालोगे, वह पूर्णता से समा जाएगा। योग्य बनने की कसौटी पात्रता में है, पांडित्य में नहीं।"

बच्चों को संस्कार दें

हर व्यक्ति सुख की तलाश में रहता है। कोई भी व्यक्ति दु:खी नहीं रहना चाहता है, बल्कि सब सुखी ही रहना चाहते हैं। एकल परिवारीय युग में जीवनयापन की शैली ऐसी हो गई है, जिससे लोगों के घरों में नकारात्मकताओं ने प्रवेश कर लिया है।

घर-परिवार के सुखी जीवन के लिए एवं नकारात्मकता के प्रभाव को दूर करने के लिए कुछ व्यावहारिक बिंदुओं पर विचार करना आवश्यक हो जाता है। इन बिंदुओं को अपनाने से हम स्वयं एवं बच्चों को नकारात्मकताओं, विसंगतियों एवं विकृतियों से दूर रख सकते हैं।

प्रत्येक घर-परिवार की अपनी संस्कृति, मर्यादाएँ एवं परंपराएँ होती हैं। उन्हीं के अनुरूप संस्कार पीढ़ी-दर-पीढ़ी आनुवंशिक रूप में प्राप्त होते रहते हैं। घर के पूर्वजों, बड़े-बूढ़ों, माता-पिता आदि के संस्कार अलग-अलग होते हैं, जो हममें और हमारे बच्चों में आनुवंशिक रूप में आते हैं।

अधिकांशत: माता-पिता को बच्चों को बचपन से ही अच्छे संस्कार देकर व अच्छी बातें बताकर उनका पालन-पोषण करना चाहिए, लेकिन उनको नकारात्मकता से बचाने के लिए यह भी जरूरी है कि उनको धन की कीमत समझाते हुए गरीबी या मध्यवर्गीय जीवन का एहसास कराया जाए, जिससे वे अहंकारग्रस्त न हों; क्योंकि अहंकार में नकारात्मकता की भावना भरी हुई होती है।

आरंभ से बच्चों को सादा जीवन—उच्च विचार का पाठ पढ़ाते हुए, नैतिक शिक्षा से समन्वित शिक्षा देनी चाहिए। घर के वातावरण को बच्चों के समक्ष सकारात्मकता एवं उत्साह से भरने के लिए खुद माता-पिता को अपने जीवन को अनुशासित बनाना चाहिए एवं आदर्श जीवन की मिसाल पेश करनी चाहिए।

किसी देश, राज्य, स्थान, अंचल की संस्कृति को अपनाना बुरी बात नहीं है—उसको 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना से अपनाया जा सकता है, लेकिन अपने घर-परिवार की संस्कृति को भुलाना भी उचित नहीं है। सभी संस्कृतियों की अच्छाइयों को लेकर उन्हें अपना बनाने का प्रयास करना चाहिए। आजकल हर परिवार में पाश्चात्य संस्कृति का रंग खूब चढ़ा हुआ है, लेकिन उसकी भी अच्छाई को लेकर उसमें अपनी भारतीय संस्कृति का रंग चढ़ाकर उसे अपनाना चाहिए। हमें उसके रंग में रँगना नहीं चाहिए।

सुखद भविष्य को भोगने के लिए, आरंभ से वे आदतें बच्चों में डालनी चाहिए, जो अपने घर-परिवार के अनुकूल हों, जिससे हमें भविष्य में पछताना नहीं पड़े। जिस तरह का लालन-पालन बचपन में करेंगे—वैसा ही परिणाम बच्चों के बड़े हो जाने पर हमें प्राप्त होगा। जैसा बोएँगे, वैसा काटेंगे।

माता-पिता आगे जाकर सोच नहीं पाएँगे कि कौन-सी आदत बच्चों में कहाँ से आई। अत: बचपन से ही बच्चों में अच्छी आदतें डालनी चाहिए; क्योंकि बहुत-सी अनुचित आदतों के जन्मदाता माता-पिता प्रेमवश ही होते हैं।

मध्यमवर्गीय परिवार के लोगों को अपने रहन-सहन को प्रतिष्ठा का प्रश्न न बनाते हुए प्रतिस्पर्धा, अहंकार आदि को स्वयं से दूर रखना चाहिए। पैसे की कीमत के महत्त्व का ध्यान हमेशा रखना चाहिए। हमारी छोटी-छोटी आदतों का बच्चों पर निश्चित रूप से असर होता है। बच्चे जैसा देखते हैं, वैसा ही करते हैं। वे बुरी आदतें बहुत जल्दी सीख जाते हैं। अत: माता-पिता को पहले स्वयं में आदर्श जीवन को प्रस्तुत करना होगा। तभी बच्चे नकारात्मकता से बच पाएँगे।

हम सामाजिक प्राणी होते हुए समाज से अछूते नहीं रह सकते हैं। अच्छा या बुरा—हम घर के अलावा समाज से भी देखकर व सुनकर सीखते हैं। इसी प्रकार बच्चे भी जहाँ वे पढ़ते हैं या रहते हैं, वहाँ के वातावरण से अछूते नहीं रह सकते हैं। बाहर के वातावरण में व्याप्त नकारात्मकताओं से बच्चों को बचाने का प्रयास माँ-बाप को अवश्य करते रहना चाहिए तथा गलत हरकतों को रोकते-टोकते रहना चाहिए। दुर्भाग्यवश आजकल ज्यादातर माँ-बाप अपने बच्चों

की नकारात्मक आदतों को देखकर प्रसन्न होते रहते हैं, लेकिन जब उनकी आदतें बुराई के रूप में पनप जाती हैं तो फिर उनको पछताना पड़ता है। हमें बच्चों की गलत हरकतों पर कभी उन्हें मारना-पीटना नहीं चाहिए, बल्कि भावनात्मक दृष्टि से उन्हें समझाना चाहिए। याद रखना चाहिए कि मारने-पीटने, शारीरिक दंड आदि के परिणाम दुष्कर हो सकते हैं।

आजकल पाश्चात्य संस्कृति के खान-पान, पिज्जा, बर्गर, चाऊमीन, चाईनीज, इटैलियन आदि व्यंजनों से ग्रसित होना घर-घर की कहानी बन गई है। दूसरी ओर हम सात्त्विक भोजन से दूर होते जा रहे हैं। परिणामस्वरूप हम और हमारे बुद्धि-विवेक की प्रखरता की कमी को हम महसूस कर सकते हैं। तात्पर्य यही है कि हमें पश्चिमी सभ्यता का भोजन सात्त्विकता के स्थान पर तामसिक प्रवृत्ति की ओर अग्रसर करता रहा है। आजकल जंक फूड आदि बच्चों की बुद्धि पर नकारात्मक प्रभाव डालते जा रहे हैं।

वर्तमान में बच्चों में प्रखरता के स्थान पर मलिनता को प्रश्रय मिल रहा है। जिसका उनकी बुद्धि पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। अपने घर को नकारात्मक ऊर्जाओं से बचाने के लिए व्यक्ति को सात्त्विकता के साथ धार्मिकता का वातावरण बनाए रखना चाहिए। घर में उचित दिशा में शुद्ध-पवित्र स्थान पर मंदिर स्थापित करना चाहिए।

अपने पूजास्थल में रोज भगवान की पूजा-अर्चना करने से, शंख व घंटियाँ बजाने से मन-मस्तिष्क स्वस्थ व प्रसन्न रहेगा तथा संपूर्ण दिवस आत्मविश्वास से भरा रहेगा। नकारात्मक विचारों से व्यक्ति दूर रहेगा। समय-समय पर यदि भजन, संकीर्तन किया जाए तो वातावरण शुद्ध व पवित्र बनेगा। बच्चों पर भी उसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ेगा। गलत आदतों से भी दूर रहने का उनका मन करेगा। बच्चों में धार्मिक संस्कार आएँगे।

अपने घर में स्वच्छता एवं पवित्रता के द्वारा नकारात्मकता को रोककर भी सुख-समृद्धि को बढ़ावा दिया जा सकता है। जूते-चप्पल आदि को मुख्य दरवाजे के बाहर उतारकर रखने, झाड़ू-पोंछा कोने में छिपाकर एक निश्चित स्थान पर रखने से भी नकारात्मक ऊर्जा नहीं आती है। खासतौर से रसोईघर, शयनकक्ष में बाहर से आने वाले जूते-चप्पलों का विशेष निषेध होना चाहिए। शौचालय की चप्पलों को रसोईघर में लाने एवं बाहर से सीधे रसोईघर में जूते-चप्पलों के साथ प्रवेश करने से नकारात्मक ऊर्जा को बढ़ावा मिलता है।

अत: स्वास्थ्य की दृष्टि एवं कीटाणुओं आदि के प्रवेश से बचाव रखने के लिए ऐसा न करना परिवार के लिए हितकारी होगा। विडंबना यही है कि आज की फैशनपरस्त पीढ़ी इन बातों का ध्यान नहीं रखती, बल्कि इन बातों को बुरा मानती है।

उक्त बातों को न मानने के परिणाम अनेक बीमारियों के रूप में एवं अन्य शारीरिक दुष्प्रभावों के रूप में हमारे सामने आने को तैयार बैठे रहते हैं। इसलिए रोगमुक्त जीवन रहने के लिए बच्चों से लेकर बड़ों को स्वच्छता व पवित्रता अपनाना जरूरी होना चाहिए।

घर में प्रतिदिन रोटियाँ बनाते समय पहली रोटी गाय को और दूसरी रोटी कुत्ते को देने का प्रयास करना चाहिए। ऐसा रोज करने से सकारात्मक ऊर्जा का घर में प्रवेश होता है। अपने घर के मुख्य द्वार के बाहर शाम के समय सफेद रंग की रंगोली बनाने से घर में सकारात्मक ऊर्जा का वास होगा। नकारात्मक ऊर्जा प्रवेश नहीं कर सकेगी।

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार घर की सुख-शांति एवं समृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि घर में जहाँ भी संभव है—वहाँ फुलवारी, पेड़-पौधे, तुलसी का पौधा अवश्य लगाने चाहिए। तुलसी के पौधे से वातावरण शुद्ध व पवित्र रहता है। नकारात्मक ऊर्जा भी घर में नहीं आती है। पौधों को रोज जल देने से हमारे ग्रह-नक्षत्र भी शांत रहते हैं। किसी प्रकार की क्रूरता का आभास भी हमें नहीं होता है।

अंत में यह ही कहा जा सकता है कि यदि हमारा जीवन संस्कारित एवं अनुशासित होगा तो घर-परिवार, बच्चों का भी जीवन आदर्शपूर्ण एवं सदाचारी होगा। यदि बच्चों का भविष्य सुखद, उज्ज्वल बनाने में हम समर्थ हो जाते हैं तो उज्ज्वल भविष्य का सपना अवश्य साकार होगा।

बच्चों के उज्ज्वल भविष्य से हमारा भी उज्ज्वल भविष्य जुड़ा हुआ है। इसलिए समस्त व्यावहारिक बिंदुओं को अपनाकर अपने परिवार का भविष्य उज्ज्वल एवं सुखद बनाएँ। नकारात्मकताओं को जीवन से हटाने का सतत प्रयास करें। बच्चों को बचपन से संस्कारित करने का प्रयास सभी को करना चाहिए। ❑

भगवद्भक्त संत एकनाथ

एकनाथ एक उच्चकोटि के भगवद्भक्त संत थे। वे बचपन से ही बड़े बुद्धिमान, श्रद्धावान और भगवत्प्रेमी थे। वे बाल्यकाल से ही रामायण, महाभारत, पुराण आदि ग्रंथों के श्रवण में आनंद लेते थे। कहते हैं कि बारह वर्ष की अवस्था में एकनाथ के अंदर भगवत्प्रेम की प्रबल भावनाएँ उमड़ने लगीं। वे भगवद्दर्शन को व्याकुल हो उठे। अस्तु वे भगवद्दर्शन प्राप्त किसी सद्गुरु को पाने की उत्कट अभिलाषा लिए रहते थे और आखिरकार भगवत्प्रेम, भगवद्स्मरण में निरत एकनाथ की गुरु को पाने की अभिलाषा भी ईशकृपा से पूर्ण हुई।

उस दिन भगवान के विरह में व्याकुल एकनाथ रात के चौथे पहर में किसी शिवालय में बैठकर हरिगुण गा रहे थे कि तभी उन्हें एक दिव्य वाणी सुनाई पड़ी—'तुम देवगढ़ जाओ, और वहाँ जनार्दन पंत के दर्शन करो। वे तुम्हें कृतार्थ करेंगे।' उस दिव्यवाणी, आकाशवाणी को प्रभु का आदेश मानकर एकनाथ देवगढ़ के लिए प्रस्थान कर गए। कई दिनों की पैदल यात्रा के बाद वे देवगढ़ पहुँचे। वहाँ इन्हें सचमुच जनार्दन पंत के दर्शन हुए।

वे एक उच्चकोटि के संत थे। उन्हें देखते ही एकनाथ का तन-मन आनंदातिरेक से रोमांचित हो उठा। वे प्रभुकृपा से प्राप्त अपने परमस्नेही गुरु के चरणों में लोट गए। गुरु से दीक्षा प्राप्त कर वे गुरु के पास ही रहने लगे। हर प्रकार से गुरुकार्य का संपादन करते हुए वे प्रभु-भक्ति करते रहे। अंततः एक दिन एकनाथ को श्री दत्तात्रेय भगवान का साक्षात्कार हुआ।

एकनाथ ने देखा कि श्री गुरुदेव ही दत्तात्रेय हैं और दत्तात्रेय ही गुरु हैं। वास्तव में ब्रह्मज्ञानी गुरु भी तो ब्रह्म के समान ही होते हैं, इसलिए गुरु को अपने सेवाकार्य से प्रसन्न करने पर, गुरु की आज्ञानुसार साधना संपन्न कर लेने पर भक्त भगवान को भी प्रसन्न कर लेता है। अपनी सच्ची गुरुभक्ति के द्वारा एकनाथ को श्री दत्तात्रेय भगवान का साक्षात्कार होना स्वाभाविक ही था। इसके पश्चात तो एकनाथ भगवान दत्तात्रेय में ही अपने गुरु व गुरु में ही दत्तात्रेय भगवान का दर्शन हमेशा ही किया करते थे। उनके लिए उनके गुरु और भगवान में कोई भेद नहीं रहा।

इसके पश्चात सद्गुरुदेव ने एकनाथ को 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' का मंत्र देकर भगवान श्रीकृष्ण की उपासना में दीक्षित कर उन्हें शूलभंजन पर्वत पर रहकर तप करने की आज्ञा प्रदान की। अपने गुरु के आदेशानुसार एकनाथ ने वहाँ रहकर वर्षों तक कठोर तप किया। अपने हृदय में भगवान वासुदेव का ध्यान करते-करते वे गहन समाधि में डूब जाते और समाधि से जागने के बाद भी हमेशा उसी भावदशा में रहा करते। यह संपूर्ण अखिल विश्व-ब्रह्मांड उन्हें भगवान वासुदेव का ही रूप दिखाई पड़ता। वे हर जीव में भगवान वासुदेव का रूप निहारते। हर जीव को भगवद्दृष्टि से ही देखते।

इस तरह तपस्या के पश्चात एकनाथ गुरु आज्ञा से तीर्थयात्रा करते हुए अपनी जन्मभूमि पैठण लौट आए और विवाह करके गृहस्थ आश्रम में प्रवेश किया। उनकी धर्मपत्नी गिरिजाबाई भी बड़ी पतिपरायण व आदर्श गृहिणी थीं। धीरे-धीरे मानो उनका घर भी आश्रम में तब्दील हो गया। उनके यहाँ नित्य संत समागम, सत्संग होने लगा। वे गोदावरी में स्नान कर नित्य संध्यावंदन करते, शास्त्रों का पठन-पाठन करते, अग्निहोत्र करते, बलिवैश्व करते और अभ्यागतों, अतिथियों का उचित सत्कार कर उन्हें ईश्वर के मार्ग पर चलकर, मानव जीवन को सफल व धन्य बनाने की भाव-प्रेरणाएँ दिया करते।

धर्म का अर्थ है—'धारण करना'। धारण करने योग्य केवल श्रेष्ठताएँ हैं, जिनको अपनाने से लौकिक जीवन में समृद्धि, सामूहिक विकास और आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त होता है।

इस प्रकार उनके सत्संग व सान्निध्य को पाकर लोग निहाल होने लगे और देखते-देखते उनकी ख्याति महाराष्ट्र ही नहीं, बल्कि पूरे भारतवर्ष में फैल गई। उन्होंने कई कालजयी ग्रंथों की रचना की, जो आज भी कोटिशः लोगों के जीवन को प्रकाशित कर रहे हैं। ❑

देश के सर्वांगीण विकास की आवश्यकता

भाग्य व्यक्ति का होता है और देश का भी होता है। कुछ लोगों के अनुसार, इन दिनों भारत का दुर्भाग्य प्रबल है। इसलिए सदियों से यह अभागा बना हुआ है; जबकि यहाँ हजारों वर्ष पूर्व पुरातन सभ्यताएँ उत्पन्न और विकसित हुईं। यहाँ के ज्ञान ने दुनिया भर को प्रकाशित किया, परंतु समय-समय पर यहाँ सामाजिक एवं राजनीतिक कुप्रबंधों ने लोगों का हर दृष्टि से शोषण किया।

समाज में राजा और उनके कुछ सलाहकार मौज-मस्ती करते रहे और अधिकतर लोग गरीबी में ग्रस्त अपनी दयनीय जिंदगी बिताकर चलते बने। यह सिलसिला सदियों तक जारी रहा। इसके साथ ही विदेशों से आए हमलावरों ने यहाँ के अधिकतर ऐश-परस्त राजाओं को अनेक तरह के वर्गों में बाँटकर समाज पर कब्जा कर लिया। वे सदियों तक अपने ढंग-तरीके से आम और साधारण लोगों का इस्तेमाल करते रहे।

इस तरह समूचे रूप में समाज में गिरावट आती रही। सिर्फ अलग-अलग धर्मों का सहारा लेकर लोग स्वयं को दिलासा देते रहे और मुक्ति के रास्ते ढूँढ़ते रहे। अधिकतर हमलावर इस विशाल धरती को हर तरह से लूटकर अपने देश को लौटते रहे। फिर उन्होंने यहीं बसने और अपनी योग्यता से लोगों पर शासन करने की नीति अपनाई। इनमें से अधिकतर हमलावर केंद्रीय एशिया के रास्ते से भारत में दाखिल होते रहे, परंतु समुद्री रास्ता खुल जाने से यूरोप के कुछ देशों के व्यापारी समुद्र के रास्ते से आने शुरू हो गए।

इन व्यापारियों ने नाटकीय ढंग से इस कई वर्गों में बँटे देश के ऐश-परस्त शासकों को अपने कब्जे में लेकर अपना शासन स्थापित कर लिया। अँगरेजों ने भारत में 200 वर्ष के लगभग शासन किया (पंजाब में वह 100 वर्ष के लगभग शासन करते रहे)। इस दौरान उन्होंने इस देश और इसके लोगों को बुरी तरह लूटा। इन विदेशी शासकों का मुख्य उद्देश्य अपने तरीके से लूट-खसोट करके अपने देश ब्रिटेन धन-माल भेजना था, जिसमें वे पूरी तरह सफल रहे।

इसी दौरान उन्होंने इस देश के सैकड़ों छोटे-बड़े राजाओं को अपने अधीन कर लिया। वे उनसे बड़े नजराने और तोहफे लेते रहे, परंतु उनके क्षेत्रों में लोगों को इन राजाओं के रहमो-करम पर छोड़ दिया। ये राजा विलासी थे। इनको लोगों की किसी पक्ष से चिंता नहीं थी। इसलिए देश में जिन क्षेत्रों पर अँगरेजों का शासन था, वहाँ अंत में रेलें भी चलीं, डाकघर भी स्थापित हुए, शैक्षणिक संस्थान भी बनने लगे और आधुनिक तौर-तरीके भी अपनाए जाने लगे, परंतु इसके मुकाबले में रियासतों के लोग हर पक्ष से पिछड़े ही रहे।

उस समय देश की आजादी के लिए एक कड़ा संघर्ष शुरू हुआ। इसकी कहानी बहुत-सी कुरबानियों, मुश्किलों और प्रतिकूलताओं से भरी है, परंतु अंततः अँगरेजों को भारत छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा। 15 अगस्त, 1947 को देश आजाद हो गया। उस समय के सामाजिक तथा आर्थिक हालात बेहद खराब थे। ब्रिटिश साम्राज्य ने अपनी चतुर नीति से लोगों में धर्म के आधार पर बँटवारे कर दिए और इस राज्य में लोग अनेक तरह की बीमारियों और भुखमरी का शिकार होते रहे। सन् 1942 में बंगाल में पड़े अकाल से 30 लाख लोग भूख से मर गए थे। उस समय 82 % लोग गाँवों में रहते थे, जो बहुत गरीबी में जी रहे थे।

आँकड़ों के अनुसार सन् 1940 से लेकर सन् 1951 तक आम भारतीय की औसतन आयु 32 वर्ष की थी। उन्होंने अपने गाँव और क्षेत्र में कभी बल्ब भी जलता नहीं देखा था। गाँव में कोई स्कूल नहीं था, इसलिए सन् 1951 में आँकड़ों के अनुसार 84 % आबादी अनपढ़ थी। यह अनुपात महिलाओं में और भी अधिक था। 92% महिलाएँ पूरी तरह अनपढ़ थीं। आजादी मिलने से लोगों में नई उम्मीदें जगी थीं। लिखित संविधान बनने से भारत एक गणतंत्र बन गया था। 70 वर्षों में यह भारतीय संविधान की मजबूती ही कही जा सकती है कि सन् 1952 के बाद यहाँ लगातार प्रत्येक स्तर पर चुनाव होते रहे।

स्वाधीनता मिलने के उपरांत लोकतांत्रिक तरीकों से सरकारें यहाँ बनती रहीं। अदालतों की आजादी बड़ी सीमा तक बरकरार रही। साक्षरता की दर बढ़ी। इसके साथ ही भारतीयों की आयु का अनुपात 68 वर्ष के लगभग हो गया। आज भारत विकास के पथ पर है, भविष्य में इसके बड़ी शक्ति बनने की संभावना नजर आती है, परंतु भारतीय समाज अभी तक गरीबी से अपना पीछा नहीं छुड़ा सका है। आज भी देश की 30% जनसंख्या गरीबी की रेखा से नीचे ही रह रही है।

बेरोजगारी बेतहाशा बढ़ती जा रही है, बढ़ती हुई आबादी पर कोई भी सरकार लगाम लगा सकने में असमर्थ रही है। जातिवाद और सांप्रदायिकता कम होने के बजाय बढ़ते नजर आ रहे हैं। राजनीति आदर्शवादी न रहकर मौकापरस्ती का खेल बन गई है। लाख प्रयासों के बावजूद भ्रष्टाचार का कोढ़ समाज को विकृत कर रहा है और कृषि के विशाल धंधे में प्रभावशाली योजनाबंदी न होने के कारण यह संकट से घिर आया प्रतीत होता है। 70 वर्ष बाद हमारे समाज और समय की सरकारों के समक्ष अनेक चुनौतियाँ खड़ी नजर आ रही हैं, जिन पर काबू पाने के लिए बड़े प्रयासों की आवश्यकता अब महसूस हो रही है।

एक स्वस्थ और विकासोन्मुखी समाज बनाने के लिए अभी बहुत कुछ किया जाना जरूरी है, ताकि आम आदमी के लिए स्वस्थ एवं बेहतर जीवन जीने के अवसर पैदा किए जा सकें और देश को हर पक्ष से विकसित किया जा सके। इस चुनौती को स्वीकार करना और देश को सर्वांगीण विकास के पथ पर अग्रसर करना हमारा पुनीत कर्त्तव्य है। ❑

मगध के महामंत्री चाणक्य दीपक की रोशनी में कुछ शासकीय कार्यों का निपटारा कर रहे थे। तभी उनसे मिलने एक विदेशी प्रतिनिधि मंडल आ पहुँचा। उनके प्रमुख ने चाणक्य से एक कार्यक्रम की अध्यक्षता करने का अनुरोध किया। चाणक्य ने उनसे प्रश्न किया कि उनका कार्यक्रम मगध राज्य से संबंधित है अथवा उनके व्यापार से। जैसे ही दल प्रमुख ने यह उत्तर दिया कि कार्यक्रम विदेशियों के व्यवसाय से संबंधित है, वैसे ही चाणक्य ने जलता दीपक बुझाकर दूसरा दीपक जला लिया और उसके प्रकाश में उनसे बातें करने लगे।

विदेशी प्रतिनिधि को उनकी प्रतिक्रिया पर आश्चर्य हुआ। पूछने पर चाणक्य ने उत्तर दिया—''पहला दीपक सरकारी तेल से जल रहा था और दूसरा दीपक मेरे अपने अर्जित धन से। निजी कार्यों हेतु सरकारी कोष के धन का उपयोग करने का दुष्कर्म मैं नहीं कर सकता।'' चाणक्य का कथन सुन विदेशी प्रतिनिधि बोला—''जिस देश का महामंत्री इतना न्यायप्रिय और ईमानदार हो, उस देश पर कुटिल निगाहें रखने का दुस्साहस कोई नहीं कर सकता।''

मुस्कराते रहो

मनुष्य जीवन में मुस्कराहट का विशेष महत्त्व है। मुस्कराता हुआ चेहरा दूसरों के चेहरों पर भी मुस्कराहट फैला देता है, इसलिए सम-विषम दोनों ही परिस्थितियों में सदैव मुस्कराते रहना चाहिए। मुस्कराने से न केवल हम स्वयं आनंदित होते हैं, बल्कि इसके कारण संपर्क में आने वाले दूसरे व्यक्ति भी आनंद का अनुभव करते हैं।

मुस्कराहट हमारे जीवन में एक जीवनदायिनी औषधि की तरह है, इसलिए मनुष्य को हर परिस्थिति में मुस्करा कर आनंद बिखेरने का प्रयत्न करते रहना चाहिए। मुस्कराहट एक यौगिक क्रिया भी है, जिससे हमारे अंग-प्रत्यंग स्वस्थ व प्रसन्न रहते हैं। यह एक भावव्यंजना, संवेदनशीलता एवं अनुभूति का विषय है। मुस्कराता चेहरा सभी को अच्छा लगता है—जिसकी अभिव्यक्ति चारों ओर सकारात्मकता व प्रसन्नता का प्रसार करती है। यह एक क्षण में उत्पन्न होती है, परंतु इसकी मधुर स्मृति लंबे समय तक हमारे जीवन में बनी रहती है।

जीवन में मुस्कराहट को आयु वर्ग के अनुसार वर्गीकृत किया जा सकता है। प्रत्येक उम्र के व्यक्तियों की मुस्कराहट को विभिन्न प्रकार से अलग-अलग संबोधनों से अभिव्यक्त किया जा सकता है। आयु वर्ग के अनुसार—बाल्यकाल में बच्चों की मुस्कराहट सबको आनंदित करने वाली होती है; क्योंकि यह निश्छल एवं निस्स्वार्थ भाव से ओत-प्रोत होती है। बच्चे बिना किसी कारण के ही हँसते-मुस्कराते रहते हैं और अपनी इस मुस्कराहट के कारण वे सबको प्रसन्नता तो प्रदान करते ही हैं; साथ ही वे सबको अपनी ओर आकर्षित भी करते हैं।

युवावस्था में युवाओं की मुस्कराहट में सकामता एवं प्रेम-भावना होने की संभावना हो सकती है। उनकी मुस्कराहट व्यंग्यात्मक एवं अभिवादनीय गुणों से भी अभिपूरित हो सकती है। इसके अलावा सौंदर्य की प्रशंसा की स्वीकार्यता की अभिव्यक्ति में भी मुस्कराहट निहित होती है तो वहीं वृद्धावस्था में वृद्ध जनों की मुस्कराहट अधिकांशत: मंगलमयी व शुभकामनाओं से ओत-प्रोत होती है, जिसमें आशीर्वाद एवं कल्याणमयी भावनाओं का खजाना छिपा होता है। इतना ही नहीं अच्छे कार्यों की परिणति में आने वाली मुस्कराहट संतोष प्रदान करने वाली एवं खुशी के क्षणों में खुशियाँ बिखेरने वाली होती है।

इसके अलावा विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों के गुण, स्वभाव व अभिरुचि के अनुसार उनकी मुस्कराहटों की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ भी हो सकती हैं। आज के संघर्षपूर्ण एवं तनावपूर्ण वातावरण में लोग मुस्कराना एक तरह से भूलते ही जा रहे हैं। जिन परिवारों में जितना अधिक कार्य का दबाव है, उतना ही उन परिवारों के चेहरे मुस्कराहट से विहीन हैं। जब व्यक्ति उदास होता है तो निराशा उसे घेर लेती है और तब उसके चेहरे से मुस्कराहट भी अपनी एक दूरी बना लेती है, लेकिन जब व्यक्ति उत्साहित होता व आशान्वित होने के साथ उल्लास-उमंग से भरा होता है तो उसकी अभिव्यक्ति में सबसे पहले उसके चेहरे पर मुस्कराहट आती है।

जीवन में समस्याएँ आने पर व्यक्ति गंभीर हो जाता है, लेकिन उन समस्याओं का समाधान मिलने पर व्यक्ति मुस्कराने लगता है। जब हमारे मस्तिष्क में कोई नया विचार आता है, कोई योजना आती है, कोई सुखद कल्पना उभरती है, कोई पुरानी सुखद स्मृति मन में उभरती है तब हमारे चेहरे पर स्वत: ही मुस्कराहट आ जाती है। गौर किया जाए तो मुस्कराहट की एक अभिव्यक्ति चेहरे को तनावमुक्त तथा विषादमुक्त कर देती है।

मुस्कराहट की अभिव्यक्ति स्वयं को प्रसन्नता देने के साथ-साथ अनेक चेहरों पर मुस्कराहट बिखेर देती है और इस तरह मुस्कराहट का लाभ एक ही क्षण में कई लोगों को मिल जाता है। सदैव मुस्कराते रहने की आदत यदि बनाई जाए तो फिर यह हमारे स्वभाव का ही एक अंग बन जाएगा, जो हमें स्वस्थ व प्रसन्न बनाए रखेगा और हमारे आस-पास रहने वाले लोगों को भी मुस्कराने की प्रेरणा देगा। ❑

औषधीय गुणों से युक्त वनस्पतियाँ

प्रकृति में पेड़-पौधों की अनेक प्रजातियाँ हैं। इन प्रजातियों में से कई प्रजातियाँ मनुष्य के लिए लाभकारी एवं उपयोगी हैं। दुनिया में मनुष्य पौधों की तीन हजार प्रजातियों का खाद्य पदार्थ के रूप में इस्तेमाल करता है, जिनमें से 90 फीसदी खाद्य पदार्थ पौधों की केवल 20 प्रजातियों से तैयार होते हैं।

पेड़-पौधे कई तरह के होते हैं, जिनमें से उपयोगी पेड़-पौधे ही हमें लाभ पहुँचाते हैं। नीम, इमली, पीपल, पाकड़, जामुन, आम, बरगद और बेल के छायादार पेड़ इत्यादि में पर्यावरण को सुधारने की बड़ी क्षमता होती है। इनकी व्यापक कैनोपी अधिक मात्रा में कार्बन-डाइऑक्साइड को सोखकर उसे ऑक्सीजन में तब्दील कर देती है।

गहराई तक पहुँचने वाली इन पेड़-पौधों की जड़ें न केवल बारिश के पानी को धरती की कोख तक पहुँचाकर भूगर्भ जलस्तर को बढ़ाती हैं, बल्कि मजबूती के साथ ये मिट्टी के कटाव को भी रोकती हैं। इन पेड़-पौधों के फल व पत्तियाँ जमीन में मिलकर उसकी उर्वरा शक्ति को भी बढ़ाते हैं। कीट, पक्षी व जानवर इनके फल खाकर पारिस्थितिकी तंत्र को और अधिक सुदृढ़ बनाते हैं।

वनस्पति विशेषज्ञों के अनुसार—सड़कों और राजमार्गों के किनारे छायादार और ऑक्सीजन देने वाले पेड़-पौधे; जैसे—पीपल, बरगद, नीम, जामुन, कटहल, अर्जुन आदि लगाने चाहिए। आर्थिक समृद्धि व उपयोग के लिए आम, अमरूद, केला, आँवला के अलावा प्रकाष्ठ के लिए पोपलर लगाना पर्यावरणसंगत है। औषधि के रूप में भी कई पेड़-पौधों की पहचान की गई है और इनके उपयोगी भाग; जैसे—जड़, तना, पत्ती, छाल, फल या फूल का उपयोग किया जाता है।

औषधीय गुणों की दो हजार से ज्यादा देसी प्रजातियों की पहचान की गई है, जिसके साथ ही सुगंधित गुणों वाली 1300 प्रजातियों की भी खास पहचान की गई है। चिकित्सा-क्षेत्र में आयुर्वेद, यूनानी और सिद्ध चिकित्सा जैसी देशज पद्धतियों में इनकी विशेष माँग है। वनस्पति विशेषज्ञों के अनुसार—कुछ पौधे ऐसे होते हैं, जो भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ाने व भूमि की प्रकृति सुधारने में विशेष सहायक होते हैं।

वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद् (सीएसआइआर) ने रिवाइटलाइजेशन ऑफ मार्जिनल वेस्टलैंड परियोजना के तहत ऊसर, क्षारीय, लवणयुक्त तथा भारी धातुओं के चलते बंजर हो गई जमीन के सुधार हेतु कुछ औषधीय व सुगंधित पौधों को चिह्नित किया है। इनमें नीबूघास, वेटीवर, कैमोमिल, कालमेघ, खस, जावा घास, सेट्रोनिला आदि शामिल हैं।

पूरी दुनिया में उपयोग की जाने वाली 80 फीसदी दवाएँ पेड़-पौधों से हासिल की जाती हैं यानी पेड़-पौधे औषधि-उपचार का मूल खजाना व स्रोत हैं और हम चाहें तो अपने इस खजाने को और अधिक समृद्ध कर सकते हैं। अभी तक कुल पादप प्रजातियों में से केवल दो फीसद में ही औषधीय क्षमता का परीक्षण किया जा सका है।

यदि सभी तरह की पादप प्रजातियों की औषधीय क्षमता का परीक्षण किया जा सका होता तो औषधि जगत में एक तरह की क्रांति आ जाती, किंतु सभी पौधों का परीक्षण असंभव है; क्योंकि प्रकृति माँ अपनी कोख से नित नवीन औषधियों को उपजाती हैं। इन सभी तरह की वनस्पति औषधियों की पहचान करना व उनका परीक्षण करना संभव नहीं है, फिर भी मनुष्य इस दिशा में लगा हुआ है।

आज वातावरण में जो प्रदूषण फैला हुआ है उस प्रदूषण को अवशोषित करने वाले पेड़-पौधे भी प्रकृति में मौजूद हैं। यदि इनकी पहचान करके इन्हें बहुतायत में लगाया जाए तो अपने वातावरण को हम पुनः प्रदूषणमुक्त कर सकते हैं। वातावरण को प्रदूषणमुक्त व स्वच्छ करने वाले पेड़-पौधों में मुख्य हैं—अमलतास, नीम, शीशम, बाँस, पीपल, मौलश्री, आम, जामुन, अर्जुन, सागवान और इमली आदि।

कुछ पौधे ऐसे भी हैं, जो कूड़ा-करकट से खराब होने वाली भूमि को भी उर्वर व उपयोगी बनाने में सक्षम हैं। इनमें प्रमुख हैं—अर्जुन, गुलमोहर, सिरस, बबूल, अमलतास, कदंब इत्यादि।

आज हमारे वातावरण में ध्वनि प्रदूषण भी बहुत बढ़ गया है। यह प्रदूषण उन जगहों में अधिक होता है—जहाँ दुकानें, मुख्य सड़कें, राजमार्ग या हाइवे आदि होते हैं। प्रकृति में इसे अवशोषित करने वाले पेड़-पौधे भी हैं, जैसे—अशोक, नीम, कचनार, बरगद, पीपल, सेमल आदि। इसके अलावा कुछ पेड़-पौधे ऐसे हैं, जो गैसीय प्रदूषकों से निपटने में सक्षम हैं। इनमें मुख्य पौधे हैं—बेल, सिरस, नीम, बोगनवेलिया, पीपल, शीशम, इमली आदि।

इस तरह प्रकृति की हरियाली को बढ़ाने वाले ये पेड़-पौधे हमारे लिए जीवनदायक तत्त्वों की अभिवृद्धि करने वाले हैं। इनके माध्यम से प्रकृति न केवल पोषित एवं समृद्ध होती है, बल्कि प्रकृति का प्रदूषण भी इनके माध्यम से दूर होता है। प्रकृति को संतुलित करने में इन पेड़-पौधों की अहम भूमिका होती है। ये पेड़-पौधे न केवल बढ़ते हुए तापमान को संतुलित करने में हमारी मदद करते हैं, बल्कि मिट्टी के कटाव को रोकने के साथ-ही-साथ वातावरण में फैली हुई हानिकारक गैसों को भी अवशोषित करते हैं। भूमि का जलस्तर बढ़ाने में मदद करते हैं और वातावरण में ताजी व सुगंधित हवा फैलाने में सहयोगी होते हैं। वर्षा कराने में भी इन पेड़-पौधों की अहम भूमिका होती है।

ये हमें फसल के रूप में अन्न व सब्जियाँ प्रदान करते हैं, जो कि हमारा आहार होते हैं। पेड़-पौधों से हमें कई तरह के फल मिलते हैं, जो हमारे शरीर के पोषण के लिए आवश्यक होते हैं। इसके अलावा प्रकृति में बसे हुए अनेक जीव-जंतुओं के आहार व निवास का माध्यम भी ये पेड़-पौधे ही होते हैं।

इस तरह पेड़-पौधे प्रकृति के पंचतत्त्वों को संतुलित, सुव्यवस्थित एवं परिशुद्ध करने का एक माध्यम हैं। इनके माध्यम से प्रकृति व पर्यावरण जीवित एवं स्वस्थ हैं। प्रकृति के विभिन्न तत्त्वों व जीवों के बीच संतुलन है, इसलिए हमें इन पेड़-पौधों के महत्त्व को समझते हुए धरती में इन्हें लगाकर इनकी देख-भाल करनी चाहिए और इनके पोषण का ध्यान रखना चाहिए। तभी ये हमारे पोषण का भी ध्यान रख सकेंगे। ❑

सूफी संत खय्याम अपने एक शिष्य के साथ यात्रा पर निकले। वो एक जंगल से गुजर रहे थे कि उनकी नमाज का वक्त हो गया। दोनों एक चटाई बिछाकर नमाज अदा करने बैठे ही थे कि एक शेर वहाँ आ पहुँचा। उसे देख कर उनका शिष्य डर के मारे एक पेड़ पर चढ़ गया, पर खय्याम सुकून से नमाज पढ़ते रहे। शेर भी चुपचाप अपनी राह चला गया और ये दोनों फिर से अपनी यात्रा पर निकल पड़े।

कुछ वक्त बाद एक मच्छर खय्याम के पास भिनभिनाने लगा तो उन्होंने अपने शिष्य को कहा—"जरा इसे भगाओ तो सही।" शिष्य ने अचरज से पूछा—"पहले तो आप एक शेर से भी नहीं डरे, पर अभी एक मच्छर से इतना परेशान हो रहे हैं।" खय्याम हँसे और बोले—"तब मैं खुदा के साथ था और अब एक इनसान के साथ हूँ।"

आत्मसम्मान को ऐसे बढ़ाएँ

आत्मसम्मान, व्यक्ति का अपने स्व के प्रति मूल्यांकन का भाव है कि व्यक्ति स्वयं को क्या मूल्य देता है या अपना क्या मूल्य आँकता है, जो उसके स्वयं के प्रति विश्वास पर एवं उसकी भावनात्मक अवस्था पर निर्भर करता है। यह एक सूक्ष्म तत्त्व है, जो अपने स्व के प्रति सम्मान का भाव है।

आत्मसम्मान का विकास बहुत कुछ बाल्यावस्था की परवरिश पर भी निर्भर करता है। माता-पिता या अभिभावकों से उचित भावनात्मक पोषण का न मिल पाना, कुसंग, जीवन के गहरे आघात या विषम अनुभव, स्कूल या कॉलेज में खराब प्रदर्शन, गलत आदतें या किसी लत का शिकार हो जाना, आत्मसम्मान के स्वस्थ विकास को अवरुद्ध करते हैं और व्यक्ति एक गहरी हीनता के भाव से ग्रस्त हो जाता है और जीवन को इसकी परिपूर्णता में नहीं जी पाता।

इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति में तनाव, उद्वेग, एकाकीपन या अवसाद के लक्षण बढ़ जाते हैं तथा मित्रता करने या स्वस्थ संबंध बनाने या निभाने में उसे कठिनाई आती है। इसके कारण बौद्धिक कार्य एवं रोजगार आदि गंभीर रूप से प्रभावित होते हैं और व्यक्ति को शराब तथा नशे की गिरफ्त में आते देखा जाता है। ऐसे में व्यक्ति अपनी इच्छा, आवश्यकताओं एवं भावनाओं को खुलकर व्यक्त नहीं कर पाता। वह स्वयं को जीवन की सामान्य सुख-सुविधाओं एवं अधिकारों के योग्य नहीं समझता और निर्णय लेने में भी वह कठिनाई अनुभव करता है।

नकारात्मक चिंतन से ग्रस्त ऐसे व्यक्ति को लगता है कि बुरी चीजें प्रायः उसके साथ ही घटित होती हैं, वह अच्छी चीजों के लिए नहीं बना हुआ है। वह अतीत में विचरण करता रहता है और अपनी असफलताओं एवं नकारात्मक अनुभवों को ही गिनता रहता है। ऐसे में वह अत्यधिक चिंतन का शिकार हो जाता है। अपनी अक्षमता, निरर्थकता के भाव से वह आक्रांत रहता है कि कोई उसे नहीं चाहता, कोई प्यार नहीं करता, कोई उसे स्वीकार नहीं करता।

निस्संदेह एक स्वस्थ, संतुलित एवं सफल जीवन जीने के लिए आत्मसम्मान का उचित विकास आवश्यक होता है। यदि व्यक्ति किसी कारणवश आत्मसम्मान की न्यूनता से आक्रांत है, तो वह अपने स्तर पर भी इसका उपचार कर सकता है, जिसे निम्न तरीकों से बढ़ाया जा सकता है।

आत्मसम्मान विकसित करने के लिए उन दुराग्रहों से जूझें, उनकी तह तक जाएँ, जो अपना मूल्य गिराते हों। विचार करें, मन में ऐसे कौन-कौन से दुराग्रह हैं, जो स्व के भाव को नकारात्मक बनाते हैं, मन में ग्लानि का भाव जगाते हैं, स्वयं को नीचा दिखाते हैं।

ऐसी आदतों, ऐसे कार्यों की सूची बनाएँ, जो आत्मसम्मान के भाव को बदरंग कर रहे हों। आजकल स्मार्टफोन इस संदर्भ में एक खलनायक की भूमिका में उभरकर आ रहा है, जो ऐसे कृत्यों के लिए उकसाता रहता है, जो बाद में व्यक्ति के लिए चिंता एवं पश्चात्ताप का कारण बनते हैं, उसके आत्मसम्मान के भाव को क्षीण करते हैं। इसकी माया से सावधान रहें। आंतरिक आलोचक को शांत करें। अनावश्यक आलोचना करने वाली मन की नकारात्मक वाणी को शांत करें। इसे समझाएँ-बुझाएँ।

आंतरिक नकारात्मक ध्वनि प्रायः अपने ही पूर्व में किए गए कार्यों एवं घटित घटनाओं पर आधारित होती है। किसी आवेग-आवेश, अज्ञानता या परिस्थितिजन्य दबाव के तहत घटित ऐसे आंतरिक नासूर को भरने में समय लगता है, इसको ठीक होने दें। इसके लिए स्वस्थ-संतुलित जीवनचर्या को अपनाएँ एवं सात्त्विक विचार-भाव से भरे वातावरण में रहने का प्रयास करें। स्वाध्याय-सत्संग, ध्यान-प्रार्थना के माध्यम से यह कार्य बखूबी संपन्न हो सकता है। गहन आत्मनिरीक्षण के साथ इसकी जड़ों तक उतरें, इनको समझकर इसका आत्यंतिक उपचार करने का प्रयास करें।

अपने नकारात्मक विश्वासों को पहचानें तथा इनको चुनौती दें। अपने बारे में सकारात्मक चीजों को पहचानें,

इनको प्रोत्साहन दें। वर्तमान में जिएँ, अपने विचार एवं भावों के प्रति जागरूक रहें, ध्यान का अभ्यास करें और स्वयं से जुड़े रहें। अपने अंदर के आलोचक को, जो दोहरे मानदंड रखता हो, गहरा दफना दें। स्वयं के प्रति अनावश्यक रूप से कठोर तथा दूसरों के प्रति अतिशय उदार न बनें। स्वयं को भी थोड़ा स्थान दें। आंतरिक आलोचक को थोड़ा प्रशिक्षित करें। मन की कार्यशैली को समझने का प्रयास करें। कोई भी कार्य समय लेता है, मन के अवचेतन एवं अचेतन स्वरूप को समझें।

मन के साथ निपटने में अत्यधिक कठोरता नकारात्मक परिणाम भी ला सकती है। इससे समझदारी, सूझ एवं धैर्य के साथ निपटें। एक माँ की तरह बिगड़ैल मनरूपी बच्चे के साथ व्यवहार करें। एक आँख दुलार की और एक सुधार की रखते हुए इस पर अनंत धैर्य के साथ कार्य करें। बीच-बीच में स्वयं को थोड़ा ढील दें तथा वह करें, जिससे आप खुश होते हों। छोटी-छोटी उपलब्धियों पर स्वयं को शाबाशी दें तथा अपने जीवन को आनंद के साथ जिएँ। अपना श्रेष्ठतम प्रयास करें, लेकिन अपनी अकुशलता पर स्वयं को न कोसें।

राह में मानवीय त्रुटियाँ संभव हैं, जो होंगी, लेकिन इसके लिए स्वयं को सतत कोसते रहने से सारी ऊर्जा कहीं गैर-उत्पादक परिणाम में लग जाती है। ऐसे में घटना या दुर्घटना या चूक से सबक लें। इसे मोटे अक्षरों में लिखें। बार-बार सुमिरन करें और अपनी सृजन साधना को और धार दें। दोबारा गलती को करें, तो वह अलग स्तर की हो। ऐसा करते-करते एक दिन हम आत्मसम्मान के भाव से भर जाएँगे; क्योंकि छोटी-छोटी सफलताएँ आपके आत्मसम्मान को बढ़ा रही होंगी तथा एक दिन विजयी मुस्कान आपके साथ होगी।

एक खिलाड़ी की तरह हम तब हार-जीत के बीच अपना कौशल निखारते हुए आत्मसम्मान को समृद्ध कर रहे होंगे। मान कर चलें कि यहाँ कोई भी पूर्ण नहीं, हर कोई गलतियाँ करता ही है। आप भी इसके अपवाद नहीं। उस पर ध्यान केंद्रित करें, जिसे आप बदल सकते हों। उन लोगों के साथ समय बिताएँ, जो आपके बारे में अच्छी राय रखते हों तथा आपको बेहतर अनुभव कराते हों, जो आपको श्रेष्ठतम करने के लिए प्रेरित करते हों तथा आपके आत्मसम्मान के भाव को जगाते हों। यदि ऐसा संग-साथ उपलब्ध न हो तो महापुरुषों की पुस्तकों का, उनके प्रवचनों का सत्संग किया जा सकता है।

इसके लिए उनका स्वाध्याय करें, जो संघर्ष द्वारा अपने क्षेत्र में उत्कर्ष के शिखर तक पहुँचे। इस क्रम में उन लोगों से दूर ही रहें, जो आपको अपने ईर्ष्या-द्वेष तथा कुंठाओं के कारण कोसते हों या नीचा दिखाने का प्रयास करते हों, नकारात्मकता का संचार करते हों और आत्मसम्मान में गिरावट का कारण बनते हों। ऐसे लोगों से बिना अपना आंतरिक संतुलन खोए निपटने की कला सीखें। वास्तव में बुराई के प्रति उपेक्षा की दृष्टि एक स्तर तक उपयोगी रहती है। साथ ही अपने वांछित अधिकारों के लिए खड़ा होना सीखें और आवश्यकता पड़ने पर न करना सीखें।

संसार में हर काम कठिन है और हर काम सरल भी। सरल वे हैं, जिन्हें खेल की तरह दिलचस्पी के साथ और अपनी क्षमता के विकास का अभ्यास समझकर किया जाता है। कठिन वे हैं, जिन्हें आशंका, उदासी और भार-बेगार की तरह किसी प्रकार पूरा किया जाता है। — *परमपूज्य गुरुदेव*

व्यावहारिक पृष्ठभूमि पर परस्पर सकारात्मक संबंध बनाएँ और नकारात्मकता से बचें। साथ ही अपने संघर्ष की प्रेरक कहानी लिखें। रोज छोटे-छोटे कदमों के साथ आगे बढ़ें। एक चार्ट में अपनी प्रगति का लेखा-जोखा रखें। इसमें कौन-सी खामी रह रही है, उसको चिह्नित करें। रोज नई चुनौतियों का सामना करते हुए आगे बढ़ें। आप चाहें तो ऐसी परिस्थितियों का स्वयं सृजन कर सकते हैं, कसरत के रूप में स्वयं को इनके बीच झोंक सकते हैं।

अपनी संघर्षगाथा को कलमबद्ध करें तथा अपने विजयी अभियान के अनुभवों को जरूरतमंदों के साथ शेयर करें। यह भी आत्मसम्मान बढ़ाने वाला एक उपक्रम साबित होगा। अपनी तरह संघर्षशील व्यक्तियों के बारे में सोचें और उनके लिए समाधान का सूत्र बनने का प्रयास करें। ❑

संत शिरोमणि नामदेव

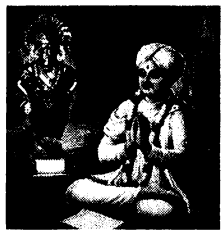

उर्वर भूमि पाकर कोई बीज सहज ही अंकुरित हो उठता है, नन्हा-सा पौधा बन उठ खड़ा होता है, और कालांतर में वह एक विराट वृक्ष का रूप धारण कर लेता है। वैसे ही भक्ति, प्रेम, पवित्रता, सदाचार जैसे दिव्य संस्कारों से भरे-पूरे परिवार में पैदा हुए बच्चों में वैसे ही दिव्य संस्कार नैसर्गिक रूप से पनपने लगते हैं। फिर एक दिन वैसे ही बच्चे महापुरुष, देवपुरुष, महामानव के रूप में न सिर्फ अपने कुल को, वरन संपूर्ण वसुंधरा को आलोकित करते हैं, आनंदित करते हैं। वे स्वयं भी धन्य होते हैं।

हैदराबाद के नरसी ब्राह्मणी गाँव के एक ऐसे ही परिवार में नामदेव का जन्म हुआ था। नामदेव के पिता दामासेठ व माता गोणाई, दोनों बड़े ही धर्मपरायण व सच्चे भगवद्भक्त थे। सच कहें तो यह कुल ही परम भागवत था। इस कुल में पीढ़ी-दर-पीढ़ी भगवद्भक्ति की परंपरा चली आ रही थी। अस्तु पूर्वजों की भगवद्भक्ति, सच्चरित्रता, सदाचार, पवित्रता, सरलता आदि सभी दिव्य गुण व संस्कार संत नामदेव जी में नैसर्गिक रूप से बचपन से ही मौजूद थे।

पूर्वजों के द्वारा अर्जित, विस्तारित धर्म व भक्ति की परंपरा ही तो परिवार को महान विरासत के रूप में मिलते हैं और यही उस परिवार की सच्ची धरोहर भी होती है। फिर माता-पिता जो कुछ करते हैं, बच्चे भी वही सीखते हैं। नामदेव जी को शैशवकाल से ही अपने घर में विट्ठल के श्रीविग्रह की पूजा, विट्ठल के गुणगान, विट्ठल के नाम-जप आदि देखने-सुनने को मिले; इसलिए वे स्वयं भी विट्ठलमय हो गए।

एक बार नामदेव के पिता दामासेठ को किसी काम से बाहर जाना था। इसलिए वे अपने कुल के आराध्य भगवान विट्ठल की पूजा-उपासना का भार नामदेव को सौंप गए। नामदेव पूजन की सामग्री लेकर भगवान विट्ठल के श्रीविग्रह के पास पहुँचे। उन्होंने सरल हृदय से भगवान की पूजा की। एक कटोरे में दूध का नैवेध अर्पित कर नामदेव ने अपने नेत्र बंद कर लिए। फिर उन्होंने नेत्र खोले और देखा कि कटोरे में दूध का नैवेद्य तो वैसा ही रखा है। भगवान ने तो उसे ग्रहण ही नहीं किया।

सरल हृदय बालक नामदेव के लिए भगवान का श्रीविग्रह कोई पाषाण-प्रतिमा नहीं थी, कोई निर्जीव मूर्ति नहीं थी। उनके लिए तो साक्षात् भगवान ही श्रीविग्रह के रूप में प्रस्तुत थे। इसलिए श्रीविग्रह के द्वारा दूध को ग्रहण नहीं किए जाने से वे परेशान हो उठे। उन्हें लगा कि मेरे ही किसी अपराध के कारण भगवान दूध नहीं पी रहे हैं। यहाँ महत्त्व भगवान के दूध पीने या नहीं पीने का नहीं था।

यहाँ महत्त्व तो उस बालक के हृदय की सरलता का था, निष्कपटता का था, पवित्रता का था; जिसके कारण बालक नामदेव की दृष्टि में भगवान का श्रीविग्रह कोई मूर्ति या पाषाण-प्रतिमा नहीं, वरन साक्षात् प्रभु ही थे जो विग्रह रूप धारण किए हुए थे।

अत: उनसे दूध ग्रहण किए जाने का एक निष्कपट, निश्छल, सरल आग्रह जो नामदेव जी ने किया। भगवान के लिए ऐसी प्रीति निश्चित ही दुर्लभ थी, जो किसी व्यक्ति में रातोरात नहीं पनपती। ऐसी भक्ति व्यक्ति के हृदय में रातोरात नहीं घटित होती। हृदय में भगवान के लिए ऐसी प्रीति पाने, पनपने व पालने में कई जन्म भी लग जाते हैं। तब कहीं जाकर भक्त के हृदय में भगवान के लिए प्रेम व प्रीति का इतना सघन रूप देखने को मिलता है।

प्रेम की ऐसी तीव्रता के कारण ही तो मीरा के कृष्ण मूर्ति से प्रकट होते थे, मीरा से बातें किया करते थे। रामकृष्ण की काली उनसे संवाद करती थीं। सूरदास के कृष्ण उनकी उँगली पकड़कर उन्हें चलाते थे। प्रेम की तीव्रता के कारण ही तो दृष्टिहीन सूरदास भगवान कृष्ण की मनोहारी छवि को निहारा करते थे। हृदय की पवित्रता व सरलता के कारण ही तो चित्रकूट के घाट पर संत तुलसीदास के हाथों प्रभु श्रीराम चंदन का लेप लगवाते थे।

सर्वज्ञ, सर्वव्यापी परमेश्वर से भक्त के हृदय की पवित्रता, निष्कपटता, निर्मलता कैसे छिपी रह सकती है

और भला सर्वज्ञ, सर्वव्यापी परमेश्वर के लिए अपने भक्तों को दर्शन देना कौन-सी बड़ी बात है।

अथर्ववेद (13.4.12) में ईश्वर के विषय में कहा गया है—**'स एष एक एकवृदेक एव'** अर्थात वह ईश्वर एक है। निश्चय से वह एक ही है। यजुर्वेद (32.3) में कहा गया है—**'न तस्य प्रतिमा अस्ति'** अर्थात उस ईश्वर की कोई मूर्ति नहीं है। यह सत्य है कि ब्रह्म निर्गुण व निराकार है। अस्तु ब्रह्म का कोई रूप नहीं, कोई आकार नहीं, कोई प्रतिमा नहीं, पर इसका मतलब यह भी नहीं कि निर्गुण निराकार ब्रह्म कोई आकार धारण नहीं कर सकता, कोई रूप धारण नहीं कर सकता। अस्तु जो ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है, वह किसी पत्थर की मूर्ति में भी अवश्य व्याप्त हो सकता है।

ईश्वर कोई प्रतिमा तो नहीं, पर वह प्रतिमा में भी अवश्य हो सकता है; क्योंकि वह सर्वत्र है, सर्वज्ञ है। हाँ! इतना अवश्य है कि हम ब्रह्म को प्रतिमा में, मूर्ति में, पाषाण में देखें, पर उन्हें पाषाण न समझें, मूर्ति न समझें, प्रतिमा न समझें। निर्गुण-निराकार ब्रह्म सगुण, साकार रूप धारण कर सकते हैं। भगवान ने गीता में स्वयं कहा है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ 4.7
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे॥ 4.8

अर्थात जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ। अर्थात साकार रूप से लोगों के सम्मुख प्रकट होता हूँ। साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिए, पापकर्म करने वालों का विनाश करने के लिए और धर्म की अच्छी तरह से स्थापना करने के लिए मैं युग-युग में प्रकट हुआ करता हूँ।

वहीं मानसकार लिखते हैं—

जब जब होइ धरम कै हानी।
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

अर्थात जब-जब धर्म का ह्रास होता है और असुर, अधम और अभिमानी प्रवृत्ति के लोगों की वृद्धि होती है तब-तब कृपानिधान प्रभु भाँति-भाँति के दिव्य शरीर धारण कर प्रकट होते हैं और सज्जनों की पीड़ा हरते हैं। अस्तु निर्गुण-निराकार ब्रह्म ही सगुण-साकार रूप में प्रकट होते हैं। वे कभी धर्म की स्थापना के लिए सगुण-साकार रूप में प्रकट होते हैं, अवतार लेते हैं तो कभी भक्तों की आकुल पुकार सुनकर वे भक्त के हृदय में आ विराजते हैं और तब भक्त को इसकी प्रत्यक्ष अनुभूति भी होती है, आनंदानुभूति भी होती है।

भगवान श्रीकृष्ण गीता (9.26) में स्वयं कहते हैं—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

अर्थात जो कोई भक्त मेरे लिए प्रेम से पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्ध बुद्धि निष्काम प्रेमी भक्त का प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं सगुण रूप से प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ। सचमुच अपने इसी वचन, आश्वासन के कारण ही तो वे समय-समय पर अपने सच्चे भक्तों के समक्ष विविध रूपों में प्रकट होते रहे हैं। अपने भक्तों को अपने होने की आनंदानुभूति, प्रेमानुभूति कराते रहे हैं। भक्त के प्रेम के वशीभूत होकर ही तो उन्होंने कभी शबरी के जूठे बेर खाए हैं तो कभी विदुर के घर साग खाया है तो फिर वे

दो मित्र चर्चा कर रहे थे। एक ने दूसरे से प्रश्न किया—"पतंगा और तितली दोनों सुंदरता की ओर आकर्षित होते हैं, पर पतंगा इस प्रयास में अपनी जान दे बैठता है और तितली प्रशंसा की पात्र बनती है, ऐसा विरोधाभास क्यों।" दूसरे ने उत्तर दिया—"मित्र! पतंगा सौंदर्य को हथियाने की कोशिश करता है; जबकि तितली उसे दूसरों तक पहुँचाती है। जीवन की समृद्धि और सफलता साधनों और सुविधाओं को बाँटने में है, उन पर एकांगी आधिपत्य में नहीं।"

प्रभु नामदेव के निष्कपट प्रेम की अनदेखी भला कैसे कर सकते थे?

वे भक्त नामदेव द्वारा अर्पित दूध के नैवेद्य को अस्वीकार कैसे कर सकते थे? हर जीव में बीजरूप में ब्रह्म का वास है, ब्रह्म का अंश है। उस दिन ब्रह्म का वही बीज नामदेव के निष्कपट-निश्छल हृदय में भगवान के लिए प्रगाढ़ प्रीति बनकर प्रकट हुआ, जिसके कारण वे भगवान से प्रकट होने की आशा लगाए बैठे रहे। इसलिए वे भगवान से आकुल हृदय से प्रार्थना करने लगे कि प्रभु आप दूध को ग्रहण कीजिए और जब उससे भी काम न चला तो वे रोते-रोते भगवान से बोले—"विठोबा! यदि तुमने आज दूध नहीं पिया तो मैं भी जीवनभर दूध नहीं पिऊँगा।"

बच्चे की प्रतिज्ञा सुनते ही वे दयामय प्रभु साक्षात् प्रकट हो गए और बालक नामदेव के द्वारा लगाए गए दूध के नैवेद्य को उन्होंने ग्रहण किया और फिर उस दिन से तो भक्त और भगवान के बीच यों ही प्रेम का आदान-प्रदान होने लगा। आगे चलकर नामदेव जी का विवाह सेठ सदार्वे की कन्या राजाई के साथ हो गया। वे बाद में नरसी ब्राह्मणी गाँव छोड़कर पंढरपुर आ बसे। यहाँ गोरा कुम्हार, सांवता माली आदि भक्तों से इनकी प्रीति हो गई। चंद्रभागा नदी में नित्य स्नान, भक्त पुंडलीक तथा उनके भगवान पांडुरंग के दर्शन और विट्ठल के गुण का कीर्तन, बस, यही नामदेव जी की उपासना का स्वरूप था। नामदेव जी के अभंगों में विट्ठल की महिमा है, तत्त्वज्ञान है, भक्ति है और विट्ठल के प्रति अपार प्रेम व आभार का भाव है।

वे सदा यही कहा करते कि मुझे तो विठोबा की कृपा पर ही भरोसा है। मुझे तो नाम-संकीर्तन ही प्रिय लगता है। यही मेरा भजन है। गुण-दोष न देखकर सबसे सच्ची नम्रता का व्यवहार करना ही वंदना है। संपूर्ण सृष्टि में एकमात्र विट्ठल को देखना और हृदय में उनके चरणों का स्मरण करते रहना ही उत्तम ध्यान है। मुख के द्वारा उच्चरित भगवन्नाम में मन को तल्लीन रखना ही श्रवण है। भगवच्चरणों का दृढ़ अनुसंधान ही निदिध्यासन है। सर्वभाव से एकमात्र विट्ठल का ही ध्यान, समस्त प्राणियों में उन्हीं का दर्शन, सब ओर से आसक्ति हटाकर उनका ही चिंतन भक्ति है।

अनुराग से एकांत में गोविंद का ध्यान करने के सिवा अन्य कुछ भी विश्राम नहीं है। सचमुच ऐसे संत ही संसार की शोभा हैं, मनुष्यता की शोभा हैं, धर्म की शोभा हैं। सचमुच ऐसे ही सरल व निष्कपट थे, संत शिरोमणि नामदेव। ❑

सिनाका प्रसिद्ध संत थे। उनका एक शिष्य अपने नवजात शिशु को उनसे आशीर्वाद दिलाने पहुँचा। सिनाका बोले—"इसे क्या आशीर्वाद दूँ?" शिष्य ने अनुरोध किया—"बस, इतना कह दें कि इसका व्यक्तित्व परिपक्व और तेजस्वी निकले।" सिनाका बोले—"भगवान करे कि इसे जीवन में संघर्षों की कमी न रहे।"

शिष्य घबराया तो सिनाका उसे समझाते हुए बोले—"पुत्र! बिना तराशे हीरे की कीमत पत्थर से ज्यादा नहीं होती। संघर्ष और कठिनाइयाँ मनुष्य के व्यक्तित्व को मजबूत और सुगढ़ बनाते हैं। जैसे श्रम के अभाव में शरीर नाकारा हो जाता है, वैसे ही विपरीत परिस्थितियों से टकराए बिना मनुष्य का व्यक्तित्व निष्प्राण बना रहता है। ये विषम घड़ियाँ ही इसके व्यक्तित्व को मजबूत और तेजस्वी बनाएँगी।"

ब्रह्मज्ञान की अनुभूति

ब्रह्म और जीव की एकरूपता की अनुभूति ही अद्वैत ज्ञान की अनुभूति है। यह वह अवस्था है, जब जीव और ब्रह्म दोनों एक हो जाते हैं, एकरूप हो जाते हैं—ठीक वैसे ही जैसे विंदु सिंधु में मिलकर एक हो जाती है। विंदु भी सिंधुरूप हो जाती है। तब द्वैतभाव पूर्णत: तिरोहित हो जाता है। जीवात्मा को यह परम अनुभूति तभी हो पाती है, जब उसे अपने नित्य, शुद्ध, चैतन्य, मुक्त व अविनाशी स्वरूप का ज्ञान होता है और यह संभव तभी हो पाता है जब श्रवण, सेवा, भक्ति, भजन, ध्यान आदि के द्वारा व्यक्ति का मन पूर्णत: निर्मल हो जाता है।

मन के निर्मल होते ही जीवात्मा गहन समाधि की अवस्था को प्राप्त होती है और उसी अवस्था में उसे अद्वैत की अनुभूति होती है। उसे स्वयं में ब्रह्म और ब्रह्म में स्वयं के होने की अनुभूति होती है। उसे सब में रब और रब में सब के होने की अनुभूति होती है। उसे तब यह संपूर्ण सृष्टि ही आत्मरूप दिखने लगती है और तब वह स्वयं को सभी प्राणियों में और सभी प्राणियों को स्वयं में देखने लगता है।

अद्वैत ज्ञान में भक्त, भक्ति और भगवान सभी एक हो जाते हैं। भक्त को, साधक को तब यह बोध होने लगती है कि भगवान कहीं बाहर नहीं, बल्कि उसी के भीतर हैं। बस, हमें तो ज्ञान, कर्म, भक्ति, ध्यान, जप आदि के द्वारा उस बोध को गहरा करना है। अद्वैत ज्ञान का अनुभव सभी साधनाओं की परम अवस्था है।

आदि शंकराचार्य की इस अद्वैत ज्ञान की ओर विशेष रुचि थी, जिसका वे भारतवर्ष में प्रसार करना चाहते थे। आचार्य शंकर समाधि की अवस्था में अपने ब्रह्मरूप होने के अनुभव में स्थापित थे, परंतु व्यावहारिक जगत् में, सब में वही ब्रह्म अभिव्यक्त हो रहा है और सबमें वही अनुभव घटित हो रहा है—इसकी उन्हें अनुभूति होना अभी शेष था; क्योंकि तब तक समाधि की अवस्था में रहते हुए स्व के अनुभव में रहना काफी नहीं था, जब तक उन्हें सभी में उसी एक के दर्शन नहीं हो जाते। दैवयोग से आचार्य शंकर की पात्रता के कारण एक दिन वह घड़ी भी आ ही गई, जब आचार्य शंकर के जीवन में भी अद्वैत ब्रह्मज्ञान उतर आया। अपने व्यावहारिक जीवन में भी उन्हें अद्वैत ब्रह्मज्ञान की अनुभूति हो पाई।

घटना इस तरह से है कि एक सुबह आचार्य शंकर नदी में स्नान करने को निकले। रास्ते में उन्होंने देखा कि एक स्त्री अपने मृत पति का सिर अपनी गोद में रखकर जोर-जोर से रो रही है। वह रास्ते में जाने वाले लोगों से अपने पति के दाह-संस्कार के लिए सहायता माँग रही थी। रास्ता बहुत सँकरा था। इसलिए उस स्त्री के रास्ते में ही बैठ जाने के कारण बाकी लोगों को जाने की जगह ही नहीं बची थी।

आचार्य शंकर भी उसी रास्ते से होकर नदी तट तक जाने को निकले थे। इसलिए उन्होंने उस स्त्री से कहा—"यदि आप शव को रास्ते के किनारे कर देंगी तो हमें आगे जाने की जगह मिल जाएगी।" पर वह स्त्री अपने पति की मृत्यु के शोक में इस कदर डूबी थी कि उसे आचार्य शंकर की बात सुनाई ही नहीं दी। उसने आचार्य शंकर की बात का कोई जवाब नहीं दिया। आचार्य शंकर बार-बार उस स्त्री से मृत शरीर को रास्ते से हटाने का अनुरोध करते रहे।

अंत में उस स्त्री ने उन्हें जवाब देते हुए कहा—"महात्मन्! आप शव को ही रास्ते से हट जाने को क्यों नहीं कह देते?" यह सुनकर आचार्य शंकर करुणापूर्ण शब्दों में बोले—"आप अभी अपने पति की मृत्यु के सदमे में हैं, इसलिए आप ऐसी अस्वाभाविक बातें कह रही हैं। भला कोई शव भी अपने आप कैसे हट सकता है? उसमें हटने की शक्ति ही कहाँ है?"

उत्तर में उस स्त्री ने कहा—"महात्मन्! आपके मतानुसार तो सारे जगत् का कर्त्ता ब्रह्म ही है तो शक्ति के बिना शव क्यों नहीं हट सकता?" स्त्री का ज्ञानयुक्त तर्क सुनकर आचार्य शंकर सोच में पड़ गए। उन्होंने अगले ही पल देखा कि वहाँ से शव और स्त्री दोनों गायब हैं। यह कैसी लीला थी? इस घटना को देखकर शंकर का हृदय एक अनोखे अनुभव से स्पंदित होने लगा।

आचार्य शंकर समझ गए कि माया की शक्ति ने आज मुझे अपना परिचय करवाया है। वे किसी तरह से नदी में स्नान कर विकल भाव से वापस लौटे। विकल इसलिए कि आप कोई बात हृदय की गहराई से मानते हैं और किसी दिन उसका सबूत मिल जाए तो आपकी अवस्था कैसी होगी? ठीक यही हालत शंकर की हुई। उस दिन आचार्य शंकर ने अनुभव किया कि माया ने ही संसार की रचना की है और वही उसे मिटाती भी है। निर्गुण ब्रह्म तो केवल द्रष्टा मात्र है।

उस स्त्री का यह कहना कि ब्रह्म ही कर्त्ता है तो शक्ति के अभाव में शव क्यों नहीं हट सकता है? यह वाक्य आचार्य के लिए महावाक्य साबित हुआ। उन्हें यह स्पष्ट बोध हुआ कि 'जीव' व 'ब्रह्म', 'दूध' और 'पानी' की तरह अभिन्न हैं और इस जोड़ी को चलाने के लिए शक्ति चाहिए, लेकिन जो शुद्ध ब्रह्म है, जो किसी जीव से नहीं जुड़ा है, वह मात्र द्रष्टा है। शक्ति के बिना वह कुछ नहीं कर सकता।

इस घटना से उन्हें दोनों में ब्रह्म के दर्शन हुए। एक में शक्तिसहित तो दूसरे में शक्तिरहित। उनके लिए स्त्री और शव में कोई भेद नहीं रहा। अद्वैत ज्ञान के प्रकाश में दोनों गायब हो गए। बचा सिर्फ एक ही अनुभव और वह था अद्वैत का।

अद्वैत ज्ञान की एक ऐसी ही घटना आचार्य शंकर के जीवन में एक बार और भी घटी। जब एक दिन वे अपने शिष्योंसहित गंगास्नान के लिए जा रहे थे; तभी उन्होंने देखा कि सामने से एक काला-कलूटा-सा चांडाल अपने साथ चार कुत्तों को लेकर चला आ रहा है। उसने आचार्य शंकर का रास्ता रोक रखा था।

उन दिनों ऐसा माना जाता था कि इतर जाति के लोगों की उपस्थिति मात्र से ब्राह्मण अशुद्ध हो जाते हैं। इसलिए शंकर के शिष्यों ने चांडाल से कहा—"रास्ते से दूर हटो और आचार्य को जाने दो।" इस पर चांडाल बोला—"मैं रास्ते से तब तक नहीं हटूँगा, जब तक आचार्य मेरे सवालों के जवाब न दे देते।""कैसे प्रश्न?" आचार्य ने सौम्य भाव से चांडाल से पूछा।

क्रोधित चांडाल ने अट्टहास करते हुए कहा—"हे महात्मन्! आपने कहा, दूर हटो तो आप किसे दूर हटाना चाहते हैं? मेरे शरीर को या मेरे शरीर में विद्यमान आत्मा को? जब हर इनसान का शरीर अन्न से पुष्ट होता है तो आपके और मेरे शरीर में क्या अंतर है?"

वह व्यक्ति आचार्य शंकर को संबोधित करते हुए बोला—"मेरा शरीर भी नश्वर है और आपका भी, फिर इनमें क्या अंतर है? आपका शरीर भी पंचतत्त्वों से बना है और मेरा भी। जब हर शरीर में एक ही आत्मा विराजमान है तो आपमें और मुझमें भेद कैसा? फिर आप स्वयं को ब्राह्मण और मुझे चांडाल कैसे कह सकते हैं? फिर तो आप व्यर्थ में ही ब्रह्मतत्त्व में स्थापित होने का झूठा अभिमान कर रहे हैं।"

वह व्यक्ति बोला—"तत्त्व की दृष्टि से ब्राह्मण और चांडाल में भेद कैसा? चाँद का प्रतिबिंब कीचड़ के पानी में पड़े या गंगाजल में अंतर कैसा? दोनों में चाँद तो वही रहता है। क्या यही आपका ब्रह्मज्ञान है?"

चांडाल की ऐसी ज्ञान से भरी बातें सुनकर आचार्य शंकर भौंचक्के रह गए। जो ज्ञान वे अपने व्याख्यानों में दिया करते थे, वही ज्ञान व्यावहारिक जीवन में उन्हें एक चांडाल ने स्मरण कराया। उनके भीतर गहरी हलचल मच गई और तुरंत ही उनके मुँह से निकला—"जो ब्रह्म को ही एकमात्र सत्य मानता है और सभी आत्माओं को एक समान देखता है, वह आदरणीय है। दूसरी सभी भिन्नताएँ असत्य हैं।" कहते हैं आचार्य शंकर को अद्वैत का व्यावहारिक ज्ञान देने हेतु स्वयं भगवान शंकर ही चांडाल के वेश में प्रकट हुए थे।

वास्तव में इन प्रसंगों से हमें भी यह बोध लेना है कि यदि हम भगवान के मार्ग पर चल रहे हैं, अध्यात्म के मार्ग पर चल रहे हैं तो हमें भी ब्रह्म को, अध्यात्म को अपने व्यावहारिक जीवन में अभिव्यक्त होने देना है। हमें अपने चिंतन, चरित्र और व्यवहार में ब्रह्म को, ईश्वर को, अध्यात्म को अभिव्यक्त होने देना है। हमें अध्यात्म मार्ग पर चलते हुए हमेशा सजग रहना है; क्योंकि पता नहीं कब हमारे जीवन में भी प्रभु ऐसी घटनाएँ प्रकट कर हमें जगाने वाले हों।

यदि हम ईश्वर के मार्ग पर चल पड़े हैं, अध्यात्म के मार्ग पर चल पड़े हैं तो हमें अब पीछे मुड़कर नहीं देखना है। हमें आगे बढ़ते जाना है, अपने मार्ग में आने वाली हर बाधा को लाँघते हुए, पार करते हुए; अपने आराध्य का, भगवान का, गुरु का स्मरण करते हुए। यदि हम ऐसा कर सके तो हमें भी एक दिन वास्तविक अध्यात्म की अनुभूति अवश्य ही होगी। इसमें कोई संशय ही नहीं है। हमें तो बस, धैर्यपूर्वक, साहसपूर्वक, उत्साहपूर्वक अपने मार्ग पर सतत आगे बढ़ते जाना है। ❑

प्रभावी समय प्रबंधन

समय एक ईश्वरप्रदत्त उपहार है। जिसने समय का सही नियोजन करना सीख लिया, समझो उसने जीवन जीने का सही सलीका सीख लिया। समय का सदुपयोग ही वह आधारभूत तत्त्व है, जिसे हर सफल व्यक्ति के भवन की नींव के रूप में देखा जा सकता है। व्यक्ति समय के सही उपयोग के आधार पर मनचाही सफलता प्राप्त कर सकता है।

समय प्रबंधन का जीवन लक्ष्य से सीधा संबंध है। यदि व्यक्ति का जीवन लक्ष्य स्पष्ट नहीं है, तो उसकी प्राथमिकताएँ स्पष्ट नहीं हो पातीं, जिस कारण समय का सदुपयोग संभव नहीं हो पाता। ऐसे में व्यक्ति गैर-महत्त्वपूर्ण कार्यों में उलझ जाता है और अपने समय तथा ऊर्जा को व्यर्थ के कार्यों में नष्ट कर रहा होता है। जीवन में लक्ष्य के साथ मूल्यों की समझ भी आवश्यक है, जिससे समय का नियोजन सही दिशा में हो सके। बिना मूल्य एवं लक्ष्य की समझ के समय का सार्थक उपयोग संभव नहीं हो पाता।

इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि सबसे पहले स्वयं के लक्ष्य की स्पष्टता के लिए समय निकाला जाए। नित्यप्रति गहन आत्मनिरीक्षण एवं मूल्यांकन के आधार पर इस पर छाया कुहासा छँटता है। इसके साथ जीवनमूल्यों के प्रति भी दृष्टिकोण साफ होता है। इससे समय अनावश्यक प्रलोभनों के चँगुल में उलझने से बच जाता है और समय का सही दिशा में नियोजन संभव होता है तथा जीवन एक सार्थक दिशाबोध के साथ आगे बढ़ चलता है।

यदि ऐसा प्रतीत होता हो कि कार्यों की स्पष्टता नहीं हो पा रही है; जीवन नियंत्रण से बाहर होता जा रहा है तथा क्या करें, क्या न करें, यह सूझ नहीं पा रहा, इतने सारे कार्य सामने पड़े हैं, कहाँ से प्रारंभ करें व किसको किस क्रम में निपटाएँ तो ऐसे में सबसे पहले सामने पड़े कार्यों की एक सूची बनाएँ। अब इनको प्राथमिकता के आधार पर क्रमबद्ध करें। इस तरह से हम अपने दैनिक एवं साप्ताहिक कार्यों की सूची बना सकते हैं। अब हम गतिविधियों को वर्गीकृत करें, जिनके प्राय: चार वर्ग बनते हैं—(1) तात्कालिक एवं महत्त्वपूर्ण, जैसे—रोजमर्रा के आवश्यक कर्त्तव्य। (2) महत्त्वपूर्ण, किंतु गैर-तात्कालिक, जैसे —योग्यतावर्द्धन के लिए अध्ययन, स्वाध्याय, ध्यान, व्यायाम आदि। (3) तात्कालिक, किंतु गैर-महत्त्वपूर्ण तथा (4) गैर-तात्कालिक एवं गैर-महत्त्वपूर्ण, जिसमें मनोरंजन या रुचि से जुड़े कार्य आते हैं।

प्राय: तात्कालिक एवं महत्त्वपूर्ण कार्यों को निपटाना प्राथमिकता में रहता है, लेकिन इनको निपटाते-निपटाते दूसरी श्रेणी के गैर-तात्कालिक, किंतु महत्त्वपूर्ण कार्य पीछे छूट जाते हैं या उपेक्षित पड़े रह जाते हैं; जबकि इन कार्यों की दीर्घकालिक सफलता एवं जीवन की गुणवत्ता के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। लंबे समय तक उपेक्षित रहने के कारण ये कार्य एक समय आपातकालीन स्वरूप ले लेते हैं और पहले स्तर के तात्कालिक एवं महत्त्वपूर्ण कार्यों को प्रभावित करते हैं।

अत: इन कार्यों के लिए एक नियत समय देना जीवन प्रबंधन की दृष्टि से समझदारी वाला कदम माना जाएगा। तीसरी श्रेणी के तात्कालिक, किंतु गैर-महत्त्वपूर्ण कार्यों को दूसरों को दिया जा सकता है। प्रथम तीन श्रेणी के कार्य संतोषजनक ढंग से निपटने के बाद ही चौथी श्रेणी के मनोरंजनप्रधान कार्यों को स्थान देना उचित रहता है। इस तरह यदि ध्यान प्रथम दो श्रेणी के कार्यों में केंद्रित रहेगा तो चौथी श्रेणी के गैर-तात्कालिक एवं गैर-महत्त्वपूर्ण श्रेणी के कार्यों में समय नष्ट करने से बचा जा सकता है।

यदि इतना ध्यान दिया गया तो समय का सार्थक नियोजन बन पड़ेगा और कार्य में संतोषजनक प्रगति दिखेगी। इसको और प्रभावी बनाने के लिए नीचे लिखे कुछ सूत्रों को अपनाया जा सकता है।

समय प्रबंधन के संदर्भ में कार्य में तत्काल जुट जाना एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व रहता है। एक अच्छे और एक औसत विद्यार्थी में यही अंतर होता है। एक तत्काल अपनी समय-सारिणी के हिसाब से पढ़ाई-लिखाई में जुट जाता है, तो दूसरा पढ़ने का मूड बनाता रहता है, सोचता ही रह जाता है और टालमटोल करता फिरता है। कार्य को सरल बनाने के

लिए, अपने कार्यस्थल का वातावरण कार्य के अनुकूल बनाए रखें। टेबल पर अनावश्यक चीजों की भीड़ को छाँटें, इन्हें व्यवस्थित रूप से रखें तथा कमरे को साफ-सुथरा रखें। कार्य के लाभ को मस्तिष्क में रखें। कार्य पूरा होने के बाद टेबल तथा कमरे को व्यवस्थित करें, ताकि अगली पारी के लिए कार्यस्थल अनुकूल स्थिति में तैयार रहे।

अपनी प्राथमिकता के आधार पर एक व्यवस्थित समय सारिणी बनाएँ, फिर हर हालात में इसका पालन करें। इसमें किसी तरह का व्यतिक्रम न होने दें, क्योंकि एक दिन की भी ढील फिर अगली बार की मुस्तैदी को प्रभावित करती है। ऐसे में नियमितता के अभाव में फिर हाथ में लिए कार्य को सफलता तक पहुँचाना कठिन हो जाता है।

गैर-जरूरी कार्यों को न करना सीखें, क्योंकि हर हाँ का अर्थ किसी दूसरे कार्य के लिए न होती है। ऐसे में गैर-महत्त्वपूर्ण कार्यों में समय लगाना, महत्त्वपूर्ण कार्यों के लिए समय की कटौती हो जाती है। अत: अपनी प्राथमिकता के आधार पर इसे तय करें। साथ ही एक साथ कई कार्यों को हाथ में न लें। यदि आ जाएँ तो इनको एक-एक करके निपटाते हुए आगे बढ़ें। यदि कार्य तत्काल संभव न हो, तो इसे बाद के लिए ठोस कार्ययोजना के साथ टाल दें। कई कार्य एक साथ पूरा करने की ऊहापोह में कोई भी कार्य सहीं ढंग से नहीं हो पाता, इसलिए एक समय में एक ही कार्य हाथ में लें, इसके पूरा होने के बाद ही दूसरे कार्य को हाथ में लें।

दीर्घसूत्रता से बचें, जिसका मूल कारण पूर्णतावादी रवैया (परफेक्शनिज्म) रहता है। इसके चलते कार्य आगे नहीं बढ़ पाता, बल्कि इसके कारण कार्य प्रारंभ ही नहीं हो पाता। इसके लिए जहाँ खड़े हैं, वहीं से आगे बढ़ना प्रारंभ करें। यदि कार्य बड़ा हो तो इसे टुकड़ों में बाँटें। कोई भी बड़ा कार्य प्राय: समय प्रबंधन में बाधा बनता है; क्योंकि इसको करने में मन स्वाभाविक रूप से टालमटोल करता है। कार्य को टुकड़ों में बाँटने से मन फिर इसके लिए तैयार होता है, छोटी-छोटी सफलताएँ अगले कार्य को सरल बनाती हैं तथा शनै:-शनै: बड़ा कार्य सरल हो जाता है।

किसी से मिलने तथा गपशप में पर्याप्त समय बरबाद होता रहता है। ऐसे में इसके लिए एक समय निर्धारित रखें। अनावश्यक गपशप और प्रपंच से सावधान रहें। साथ ही योजना के लिए भी समय निकालें। प्रात: उठकर दिनभर की योजना बनाएँ या सप्ताह के अंत में अगले सप्ताहभर की योजनाएँ बनाएँ। योजना बनाने में बिताया गया समय, कार्य के सफल एवं प्रभावी नियोजन में सहायक होता है, अत: इसमें बिताए गए समय को किसी भी रूप में समय की बरबादी समझने की भूल न करें।

समय सारिणी को बहुत कठोर न बनाएँ, बल्कि इसे थोड़ा लचीला रखें, जिसमें बदलती परिस्थितियों के साथ तालमेल की गुंजाइश हो। कार्य के बीच-बीच में विराम लें, कार्य पूरा होने पर स्वयं को पुरस्कृत करें, इससे कार्य का उत्साह बना रहता है। जब मन ऊर्जा से लबरेज रहता हो, ऐसे पलों को व्यर्थ न जाने दें, महत्त्वपूर्ण कार्य ऐसे समय में निपटा लें। साथ ही समय प्रबंधन में बाधक तत्त्वों को कम करें, जैसे—मोबाइल फोन, प्रपंच तथा समय बरबाद करने वाली अपनी अन्य गलत आदतें। समय पर सोने व जागने का क्रम बनाएँ। सार रूप में, किसी भी तरह के कार्य के प्रति उत्साह बनाए रखें, जो समय प्रबंधन में केंद्रीय भूमिका निभाता है व समय के सदुपयोग को सरल बनाता है। ❑

अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति।
जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जित: कृतप्रयत्नोऽपि गृहे विनश्यति॥

भगवान जिसकी रक्षा करते हैं, वह व्यक्ति बिना किसी रक्षा के साधनों के भी जीवित रहता है और उनके द्वारा अरक्षित व्यक्ति सारी सुरक्षा के बाद भी जीवित नहीं रहता। तभी तो वन में छोड़ा हुआ अनाथ भी जीवित रहता है; जबकि घर पर हर प्रकार की देख-रेख एवं बचाव के प्रयत्नों के उपरांत भी व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त होता है।

ईमानदारी-एक जीवनशैली

एक दिन अचानक एक गरीब व्यक्ति एक अमीर व्यक्ति से मिलने उसके घर पहुँचा। वह अमीर व्यक्ति एक आलीशान महल में अपने ढेर सारे सेवकों के साथ रहता था। जैसे ही वह गरीब व्यक्ति उस अमीर के दरवाजे पर पहुँचा, वैसे ही नौकरों, चौकीदारों ने उसे अंदर जाने से रोक दिया, पर वह बार-बार उस अमीर व्यक्ति से मिलने की जिद कर रहा था।

सेवकों, चौकीदारों ने समझा कि यह कोई नौकरी माँगने या कुछ रुपये-पैसे माँगने आया है, पर वह गरीब व्यक्ति बार-बार यही कहता रहा कि मैं रुपये-पैसे, नौकरी माँगने नहीं आया। मुझे तो सेठ जी से मिलना भर है। अंतत: उस महल के सेठ को यह जानकारी भी मिल गई कि कोई व्यक्ति उनसे मिलने की जिद कर रहा है। अस्तु सेठ जी स्वयं ही दरवाजे पर पहुँचे।

वहाँ पहुँचते ही उन्होंने देखा कि वह व्यक्ति खड़ा है, पर वे यह देखकर आश्चर्यचकित रह गए कि उस व्यक्ति के हाथ में जो बैग है, वह तो उन्हीं का है, जो पिछले दिनों वे कहीं रेलवे स्टेशन के पास भूल आए थे। उन्होंने उस व्यक्ति को आदरसहित घर के अंदर बुलाया। उस गरीब व्यक्ति ने कहा—"सेठ जी! मैं एक साधारण व्यक्ति हूँ। मैं रिक्शा चलाता हूँ। इसी से अपना गुजर-बसर करता हूँ। एक दिन रिक्शे से जाते हुए रेलवे स्टेशन के पास पड़े इस बैग पर मेरी नजर पड़ी। मैंने देखा कि इसमें सोने-चाँदी के गहने भरे हैं। कुछ रुपये भी हैं। मैंने फिर उस बैग में एक परची में आपका पता देखा और आपकी अमानत पहुँचाने आपके पास आ गया। आप अपने बैग को ठीक से देख लीजिए, सामान सही सलामत तो है न?" सेठ जी ने अपना बैग देखा। सारा सामान सुरक्षित था।

उस सामान्य से दिखने वाले व्यक्ति की ईमानदारी को देखकर सेठ जी हक्के-बक्के रह गए। उन्होंने उस व्यक्ति को गले से लगा लिया और उस बैग से कुछ रुपये निकालकर वे उसे देने लगे, पर उस व्यक्ति ने उनसे रुपये लेने से मना कर दिया। उसने कहा—"सेठ जी! आपके बैग को आपको सौंपकर मुझे जो खुशी मिल रही है, वह मुझे किसी रुपये-पैसे, सोने-चाँदी पाकर नहीं मिल सकती।" उसकी ईमानदारी देखकर वे सेठ जी बोल पड़े—"तुम धन्य हो, तुम धन्य हो। मैं तुम्हारी ईमानदारी के समक्ष नतमस्तक हूँ।" और फिर वह गरीब व्यक्ति वहाँ से वापस लौट गया। वापस लौटते हुए उसकी ईमानदारी, उसकी आत्मा को आनंदित कर रही थी, आह्लादित कर रही थी, प्रफुल्लित कर रही थी। उसे ऐसा लग रहा था कि उसने सचमुच कोई बहुमूल्य चीज पा ली हो। यह कहानी हमें यह बताने के लिए काफी है कि सचमुच असली अमीरी धन-दौलत में नहीं, वरन ईमान की अमीरी में है।

अक्सर हम अपने जीवन में ऐसी कहानियों से दो-चार होते रहते हैं। अपनी ऐसी अमीरी व ईमानदारी के कारण अक्सर ऐसे लोग समाज में सम्मानित किए जाते हैं। वे सुर्खियों में रहते हैं एवं जीवन के हर क्षेत्र में, हर पेशे में, हर व्यवसाय में ईमानदारीपूर्वक काम करने वाले लोग भी अपनी ईमानदारी के कारण विशेष आदर-सत्कार व सम्मान पाते हैं। ईमानदारी है ही ऐसी चीज। सचमुच ईमानदारी सर्वश्रेष्ठ मानवीय गुण है। यह एक दैवी गुण है। सच कहें तो मनुष्य के सद्गुणों में ईमानदारी सर्वोच्च है, सर्वोत्तम है, सर्वश्रेष्ठ है, सर्वोपरि है।

जिस व्यक्ति में ईमानदारी जितनी अधिक है, वह उतना ही अच्छा व्यक्ति है और जिस व्यक्ति में ईमानदारी जितनी कम है, वह उतना ही कम अच्छा व्यक्ति है और जिस व्यक्ति में ईमानदारी बिलकुल ही नहीं है तो वह बिलकुल ही अच्छा व्यक्ति नहीं है। निस्संदेह वह बुरा व्यक्ति है। जो ईमानदार नहीं है, वह निश्चित ही बेईमान है। ईमानदारी एक ऐसा गुण है, जिसे अच्छे ही नहीं, बुरे लोग भी पसंद करते हैं; क्योंकि बेईमान व बुरे लोग भी अपने लिए ईमानदार साथी व सहयोगी चाहते हैं।

ईमानदार होने का अर्थ है सच्चा होना, सत्यपरायण होना, सत्यनिष्ठ होना, धर्मनिष्ठ होना, सत्य और न्याय का पक्षधर होना। ईमानदार व्यक्ति होने का अर्थ है—चित्त में सद्वृत्ति या अच्छी नीयत रखने वाला। कुल मिलाकर कहें तो सच्चा होना ही ईमानदार होना है। ईमानदारी मनुष्य का ईमान है, धर्म है; जो उसके सच्चे मनुष्य होने का द्योतक है।

युगऋषि पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी के अनुसार—ईमानदार होने का अर्थ है हजार मनकों में अलग चमकने वाला हीरा। हजार मनकों के बीच होते हुए भी हीरा उन सभी मनकों में अलग दिखता है; क्योंकि उसमें एक खास चमक है। उसमें एक विशेष आकर्षण है। लोग उसे सहेजकर रखते हैं; उसके गहने बनाकर पहनते हैं, जिससे उनकी सुंदरता में चार चाँद लग जाते हैं। वैसे ही हजारों, लाखों, करोड़ों लोगों के बीच होते हुए भी एक ईमानदार व्यक्ति उन सबसे अलग दिखता है; क्योंकि उसमें एक विशेष चमक है, जो उसकी ईमानदारी के कारण उसमें पैदा हुई है।

उसकी उस चमक के कारण ही उसमें एक विशेष आकर्षण होता है, जिसके कारण लोग उसके प्रति आकर्षित होते हैं, नतमस्तक होते हैं। लोग उसकी पूजा करते हैं, उसकी इज्जत करते हैं, उसकी इबादत करते हैं। लोग उसे अपना मित्र, सहयोगी व रिश्तेदार बनाना चाहते हैं। राष्ट्र में, विश्व में ऐसा व्यक्ति सर्वत्र पूजनीय हो जाता है। वह जहाँ भी जाता है लोग उसे सम्मान की दृष्टि से देखते हैं, प्रेम की दृष्टि से देखते हैं। विश्वास की दृष्टि से देखते हैं, भरोसे की दृष्टि से देखते हैं।

ईमानदार होने का अर्थ कुछ विशेष हिसाब-किताब, लेखा-जोखा आदि मात्र में ईमानदार होने तक सीमित होना नहीं है, बल्कि ईमानदार व्यक्ति जीवन के हर पहलू में अपने सच्चे होने का परिचय देता है। वह व्यक्ति यदि चिकित्सक है तो रोगियों की सेवा-शुश्रूषा, चिकित्सा में उसकी ईमानदारी दिखती है। वह हर कीमत पर, हर हाल में अपने कर्त्तव्य का निष्ठापूर्वक पालन करता है। उसकी ईमानदारी उसके कार्यों में प्रकट होती है। उसकी ईमानदारी उसके आचरण से, व्यवहार से प्रकट होती है।

यदि वह व्यक्ति विद्यार्थी है तो वह विद्यार्थी जीवन के अनुशासन का पूर्णतः पालन करता है। यदि वह व्यक्ति अध्यापक है तो उसकी ईमानदारी उसके अध्यापन में प्रकट होती है। यदि वह व्यक्ति अभियंता है तो उसकी ईमानदारी उसके द्वारा किए गए निर्माण कार्य की पूर्णता व मजबूती में प्रकट होती है। यदि व्यक्ति किसान है तो उसकी ईमानदारी, उसकी किसानी में दिखती है। यदि वह व्यक्ति उद्योगपति है तो उसकी ईमानदारी समाजहित में किए गए उसके योगदान में दिखती है। यदि वह खिलाड़ी है तो उसकी ईमानदारी खेल के प्रति उसकी निष्ठा, उसकी खेल-भावना में दिखती है।

वह व्यक्ति अपने पारिवारिक रिश्तों में भी उतना ही ईमानदार होता है। एक पति, पत्नी, भ्राता, चाचा, चाची, माँ आदि सभी रूपों में, सभी भूमिकाओं में वह खरा उतरता है। एक साधक के रूप में वह अनुशासन, व्रत, साधना आदि में पूर्ण ईमानदार होता है। वह अपने गुरु के बताए मार्ग व अनुशासन का शत-प्रतिशत पालन करता है।

असुरों ने अपने बुद्धि-कौशल व कूटनीति से देवताओं को इक्कीस बार पराजित किया और प्रत्येक बार इंद्रासन पर प्रतिष्ठित हुए, किंतु हर बार वे दीर्घकाल तक देवलोक के स्वामी न बने रह सके और अंततः स्वर्ग छोड़ने के लिए विवश हुए।

देवर्षि नारद ने प्रजापति ब्रह्मा से पूछा—"तात! विजयी होने पर भी असुर इंद्रासन पर अपना अधिकार क्यों न रख सके?" ब्रह्मा ने उत्तर दिया—"पुत्र! छल व छद्म से ऐश्वर्य तो प्राप्त किया जा सकता है, परंतु उसका उपभोग विवेकवान एवं संयमी पुरुष ही कर पाते हैं। संयम की उपेक्षा करने वाले असुर जीतने पर भी इंद्रासन पर एकाधिकार कैसे कर सकते थे?"

वहीं इसके विपरीत एक बेईमान व्यक्ति जिसके पास कोई ईमान नहीं वह अध्यापक, अभियंता, चिकित्सक, उद्योगपति, कलाकार, खिलाड़ी जिस किसी रूप में हो—वह गैर-जिम्मेदार ही होता है। ऐसे व्यक्ति में कर्मनिष्ठा, सत्यनिष्ठा, धर्मनिष्ठा आदि का घोर अभाव होता है। वह

से अंततः लाभ-ही-लाभ होता है। ईमानदारी की मजबूत व उर्वर आधारभूमि पर उसकी आध्यात्मिक प्रगति भी दिन दूनी-रात चौगुनी होने लगती है।

वास्तव में वह अपने जीवन को ही महोत्सव बना लेने में सफल होता है। वह जीवन के हर पल को त्योहार की तरह जीता है। उसका जीवन एक उत्सव बन जाता है। उसका जीवन महोत्सव बन जाता है। उसका जीवन भौतिक व आध्यात्मिक, दोनों ही दृष्टि से पूर्ण हो जाता है, संपूर्ण हो जाता है। उसका जीवन मुरझाया हुआ नहीं, बल्कि गुलाब की तरह खिला हुआ होता है; जिसकी महक से, सुगंध से उसका जीवन भर उठता है। वह परिवार, समाज सबके लिए उदाहरण बन जाता है। ईमानदारी की एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि यह अपने साथ कई अन्य सद्गुणों को भी स्वयं ही खींच लाती है।

ईमानदार व्यक्ति हमेशा निर्भीक व निर्द्वंद्व रहता है। ईमानदारी के कारण उसके अंदर करुणा, प्रेम, सेवा, संवेदना, क्षमा, त्याग, न्याय आदि दैवी गुण स्वतः ही पनपने लगते हैं और उसके सारे कषाय-कल्मष समाप्त हो जाते हैं। इसलिए उसकी भौतिक प्रगति के साथ-साथ आध्यात्मिक प्रगति भी शीघ्र होने लगती है। वहीं बेईमानी एक ऐसा दुर्गुण है, जो अपने साथ-साथ झूठ, फरेब, असंयम, अधैर्य, धूर्तता, शातिरता, निर्दयता, भय, हीनभावना, निराशा आदि सभी दुर्गुणों को अपने पास बुला लेती है और व्यक्ति को उन सभी दुर्गुणों से भर देती है। अस्तु यदि हमें जीवन में उमंग भरना है, उल्लास भरना है, उत्साह भरना है, यदि हमें अपने जीवन को उत्सव बनाना है, महोत्सव बनाना है तो हमें अपने जीवन में ईमानदारी का पालन करना शुरू कर देना चाहिए।

यदि वर्तमान में यह हमारे स्वभाव का हिस्सा नहीं है तो भी हमें इसका अभ्यास करते रहना चाहिए। हमारे लिए ईमानदारी एक विकल्प नहीं, बल्कि अनिवार्यता होनी चाहिए। यह हमारी दिनचर्या में वैसे ही शामिल होनी चाहिए जैसे—खाना-पीना, सोना-जागना, हँसना-बोलना आदि। यदि ईमानदारी को हम जीवनशैली बना लें तो यह निश्चित ही हमारे जीवन को निहाल कर सकती है, और हमारे कारण औरों के जीवन को भी। यह हमारे साथ-साथ औरों के जीवन को भी आसान, सरल, सहज बना सकती है व उसे खुशियों से भर सकती है।

एक ईमानदार व्यक्ति बनकर हम एक सभ्य, सुसंस्कृत परिवार, समाज व राष्ट्र के निर्माण में एक महत्त्वपूर्ण इकाई के रूप में अपना बहुमूल्य योगदान दे सकते हैं। अस्तु इसका अभ्यास आज, अभी और यहीं से प्रारंभ कर लें। ईमानदारी का अभ्यास करते-करते एक दिन निश्चित रूप से यह हमारी मूल प्रवृत्ति बन जाएगी। ❑

दो भाइयों में बहस छिड़ गई कि दुनिया में सबसे शक्तिशाली क्या है? अपनी समस्या का निराकरण कराने वे अपने पिता के पास पहुँचे। सब सुनकर पिता जी बोले—"दोनों बिलकुल गधे हो! फालतू की बातों में अपना और मेरा समय जाया कर रहे हो।" अपना अपमान सुन दोनों तिलमिलाए, पर मर्यादावश कुछ बोल नहीं पाए।

थोड़े समय के पश्चात पिता जी पुनः बोले—"तुम दोनों कितने बुद्धिमान हो। अपना खाली समय जीवन के गूढ़ विषयों के प्रतिपादन में गुजारते हो। मुझे तुम पर बड़ा गर्व है।" अपनी प्रशंसा सुन दोनों के चेहरे खिल उठे। यह देख उनके पिता जी बोले—"पुत्रो! दुनिया में सबसे शक्तिशाली मनुष्य की वाणी है। यह बिना हथियार उठाए क्रांति करा सकती है और बिना परिश्रम करे शांति भी। जीवन में इसका हमेशा सदुपयोग करना।"

खोली और रखी हुई पुस्तकों में 'वाल्मीकि रामायण' की पोथी निकाली। व्यवस्था विभाग को इस बारे में बताया और अपने कमरे में ले जाकर पूजा स्थान पर रख दिया।

सुबह गायत्री जप और ध्यान आदि का नित्य क्रम पूरा कर लिया था। वाल्मीकि रामायण को पूजा स्थान पर रखा तो रखने से पहले उसे साफ किया, पोंछा, ग्रंथ के पन्ने उलटे-पलटे और उसमें रखे धागे को पहले अध्याय के आरंभ में रखा। फिर ग्रंथ की पूजा की, दीपक जलाया और पूजा-चौकी पर स्थापित कर ग्रंथ देवता का आह्वान किया। कहीं पढ़ा था कि शास्त्र का श्रद्धाभाव से अध्ययन किया जाए तो उसके देवता ग्रंथ का रहस्य अपने आप खोल देते हैं। अनादर या आनन-फानन में पढ़ने लगने पर ग्रंथ अपने आप को सिकोड़ लेते हैं, अध्येता को अपने मर्म तक नहीं पहुँचने देते। उन साधक ने इस शिक्षा का स्मरण करते हुए ही पूजा-चौकी पर ग्रंथ की प्रतिष्ठापना कर ली थी। इसके बाद उन्होंने ग्रंथकर्त्ता वाल्मीकि को प्रणाम किया और गुरुदेव का स्मरण करते हुए रामायण का पहला अध्याय पढ़ लिया। 'संक्षिप्त रामायण' अथवा 'मूल रामायण' के नाम से प्रसिद्ध इस अध्याय का स्वतंत्र अध्ययन भी किया जाता है। इस अध्याय में संपूर्ण रामचरित का संक्षिप्त वर्णन किया गया है।

पहला अध्याय पढ़कर साधक ने ग्रंथ बंद कर दिया और दैनंदिन कार्यों में लग गए। दोपहर एक बजे के लगभग गुरुदेव प्रवचन के लिए नीचे उतर रहे थे। वे कार्यकर्त्ता सामने ही दिखाई दे गए। उन्होंने गुरुदेव को प्रणाम किया तो उन्होंने पूछा—"काम शुरू कर दिया बेटा!" साधक ने कहा—"मूल रामायण के आधार पर एक रूपरेखा तैयार की है गुरुदेव! आपको बताना है।"

चलते-चलते गुरुदेव ने कहा—"तीन बजे के करीब आ जाना। उस वक्त बात कर लेंगे।" यह कहकर गुरुदेव आगे बढ़ गए। साधक ने तय समय पर गुरुदेव के पास अपने सुबह के काम की रिपोर्ट दी। गुरुदेव ने सुनकर कुछ सूत्र बताए और कहा इस तरह तुम्हें रामायण समझने में महीना भर भी नहीं लगेगा। उस साधक ने अगले दिन से ही उन सूत्रों पर अमल शुरू कर दिया। देखा कि पहले दिन ही खूब मन लगा। अध्ययन शुरू करते ही जैसे ग्रंथ स्वयं बात करने लगा। आनंद आया। अगला दिन, फिर दूसरे दिन और तीसरे-चौथे दिन भी इसी तरह अध्ययन किया। लगता था जैसे आनंद की वर्षा हो रही है। ग्रंथ खोलते ही महर्षि वाल्मीकि रामायण पर प्रवचन करने लगते हैं।

इसी बीच एक दिन की बात है। स्वाध्याय-साधना की व्यवस्था में जुटे वे कार्यकर्त्ता प्रातःकालीन उपासना में तल्लीन थे। ब्रह्मसंध्या के षट्कर्म संपन्न कर लेने के बाद सविता देवता के ध्यान के साथ गायत्री मंत्र का जप चल रहा था। ध्यान में सविता के तेजोमय प्रकाश के साथ गुरुदेव की छवि का स्मरण भी आ जाता। ध्यान की गहन भाव भूमिका में उन कार्यकर्त्ता ने देखा कि एक गौर वर्ण ऋषि अपने साथ दो किशोर बालकों को लेकर गंगा के तट पर विचरण कर रहे हैं। उन बालकों में एक श्यामवर्ण थे और दूसरे का रंग साफ गौर था। दोनों की उम्र चौदह-पंद्रह वर्ष रही होगी। उन्होंने हाथ में धनुष-बाण लिए हुए थे। यात्रा के समय धनुर्धारी अपना धनुष प्रायः बाएँ कंधे पर रखते हैं और दाएँ कंधे पर तूणीर होता है। युद्ध का अवसर आने पर बाएँ कंधे से उतरकर धनुष हाथों में आ जाता है और शर-संधान करते समय दाहिने कंधे के पीछे संचित तीर निकालकर धनुष की प्रत्यंचा पर चढ़ाते हुए शर-संधान किया जाता है। उन किशोरों ने बाएँ हाथ में धनुष पकड़ रखा था और दाहिने हाथ में एक-एक तीर था। ध्यान-जप में बैठे साधक ने अनुमान लगाया कि दोनों कुमार अपने गुरु के साथ आततायी शक्तियों का नाश करते घूम रहे हैं। साधक को आभास हो रहा था कि वे गंगा के तट पर स्थित एक पीपल के वृक्ष के नीचे बैठे संध्या-गायत्री का सेवन कर रहे थे।

ऋषि और उनके साथ चल रहे दोनों कुमार भी गंगा के तट पर रुके। ऋषि ने पास ही खड़े एक वृक्ष की ओर इशारा किया और कुमारों ने अपने धनुष-बाण उस वृक्ष की शाखाओं पर रख दिए। वहाँ से आकर वे गंगा की धारा में उतरे। हाथ-पैर-मुँह आदि धोने के बाद उन्होंने सविता देवता को अर्घ चढ़ाया और बाहर आकर अपने गुरु को प्रणाम किया। तीनों ने आपस में कुछ बातें कीं, दरअसल उसे वार्त्तालाप कहना ठीक नहीं होगा। बोल तो ऋषिदेव ही रहे थे, दोनों कुमार उनकी बातें सुन रहे थे और बीच-बीच में कुछ पूछ लेते थे। उधर वृक्ष के नीचे बैठे साधक का ध्यान उन तीनों की ओर लगा हुआ था। वे बड़े ध्यान से देख रहे थे।

विष्णु की तपस्थली

ऋषि भगवान ने साधक की मनःस्थिति शायद समझ ली थी और वे दोनों कुमारों के साथ उस वृक्ष की ओर ही

बढ़ते हुए आने लगे। उन्हें अपनी ओर आता देख साधक अपने स्थान से उठ गए और दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम की मुद्रा में उनका स्वागत करते हुए आगे बढ़े। पास पहुँचकर उन्होंने ऋषि के चरणस्पर्श किए और उन दोनों किशोरों को भी प्रणाम किया। उन कार्यकर्त्ता को आभास था कि यह अनुभव प्रत्यक्ष जगत में हो रहा है, स्वप्न या भाव जगत में नहीं। लेकिन गंगा का जो तट दिखाई दे रहा था, वह शांतिकुंज या वाराणसी अथवा दक्षिणेश्वर आदि जैसा नहीं था; जहाँ गंगा का पाट चौड़ा है और न ही ऋषिकेश, उत्तरकाशी या गंगोत्तरी जैसा था। गंगा के देखे हुए कोई भी किनारे अथवा प्रवाह उन साधक को स्मरण नहीं आ रहे थे, लेकिन दृश्य मनोहारी था। फिर उन्होंने देखा ऋषि अपने साथ आए कुमारों से कुछ कहने लगे। जो कह रहे थे मद्धिम स्वरों में था, तीनों साधक से काफी दूर थे, फिर भी उन्हें तीनों का वार्त्तालाप सुनाई दे रहा था। ऋषि उन कुमारों से कह रहे थे, इस स्थान पर युगों पूर्व भगवान विष्णु ने तप किया था। वामन अवतार लेने से पहले यहाँ उन्हीं का आश्रम था। यह स्थान सिद्धाश्रम नाम से प्रसिद्ध था। राजा बलि ने इंद्र और मरुद्गणों को पराजित करने के बाद यहाँ एक विशाल यज्ञ किया था। उस यज्ञ में भगवान विष्णु ने वामन का अवतार लेकर तीनों लोकों को राजा बलि के आधिपत्य से बचाया था। उन्होंने अपनी शक्ति से बलि का निग्रह कर तीनों लोकों को पुनः इंद्र के अधीन कर दिया था।

साधक को इस वृत्तांत से कुछ बोध हो रहा था। उन्हें वाल्मीकि रामायण का एक प्रसंग याद आ रहा था, जिसमें विश्वामित्र राजा दशरथ से राम और लक्ष्मण को माँगकर ले जाते हैं और उन्हें अपने यज्ञ की रक्षा का भार सौंपते हैं। ध्यान की अवस्था में साधक ने देखा और सुना कि ऋषि भगवान जो संभवतः महर्षि विश्वामित्र ही थे। वे दोनों किशोरों से, जिनके बारे में साधक ने समझा था कि राम और लक्ष्मण होंगे, कह रहे थे—वामन रूप में आपने यहाँ दीर्घकाल तक निवास किया था, इसलिए यह आश्रम सब प्रकार के दुःखों और शोक-संतापों से रहित है। इस आश्रम पर भगवान वामन के निवास का प्रभाव कुछ कम होने लगा है। इस कारण मेरे यज्ञ में विघ्न डालने के लिए यहाँ राक्षस गण आने लगे हैं। यहाँ तुम्हें उन दुराचारियों का अंत करना है। कहते हुए विश्वामित्र उन दोनों कुमारों को अपने साथ आश्रम में ले जाने के लिए उद्यत हुए। उन ऋषि को आया देख सिद्धाश्रम में रहने वाले तपस्वी पता नहीं कहाँ से और किस दिशा से दौड़े चले आए। उन सबने ऋषि की यथाविधि पूजा-वंदना की और दोनों राजकुमारों का भी सत्कार किया।

अनुभूति के इस चरण में प्रवेश करने के बाद साधक की भाव समाधि टूटी और प्रफुल्लित से वे उठे। इस अनुभव से उन कार्यकर्त्ता में उल्लास और उमंग का कुछ ऐसा भाव उमड़ा कि उसी दिन प्रातः दर्शन के समय ही उन्होंने माताजी से अपने अनुभव के बारे में बताया। माताजी ने कहा—"यह गुरुदेव की कृपा है बेटा! इसका रहस्य वही बताएँगे। मैं तुम्हें इतना ही कहूँगी कि तुम्हारी साधना प्रखर हो रही है।"

माताजी के इस प्रोत्साहन ने साधक को संतुष्ट कर दिया था। लगा कि उन्हें बता दिया है तो गुरुदेव को भी पता चल ही गया है। अब उन्हें अलग से बताने की क्या आवश्यकता है? यही सोचते हुए वे कार्यकर्त्ता प्रातःकाल के नियत क्रम के अनुसार सुबह गुरुदेव के पास पहुँचे। प्रणाम के बाद कल के काम-काज और आज के कार्यक्रम की जानकारी देना चाहा ही था कि गुरुदेव ने कहा—"जल्दी ही तुम्हें सिद्धाश्रम जाना पड़ सकता है। अब वहाँ की स्थितियाँ बदल गई हैं। वह सिद्धों और योगी, यतियों की प्रयोगशाला की तरह हो गया है। इस बीच कई योगी-यति वहाँ पहुँचे हैं और युग के अनुरूप साधना-उपासना के प्रयोगों में लगे हुए हैं।

(क्रमशः)

ये पायवो मामतेयं ते अग्ने, पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन्।
ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा, दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः॥

— ऋग्वेद (1/147/3)

परोपकार और परमार्थ के कार्यों में निंदा, लांछन, उपहास आदि का भय नहीं करना चाहिए। *ऐसे मनुष्यों की रक्षा स्वयं परमात्मा करता है।* अतः निश्चिंत होकर लोक-कल्याण में लगे रहना चाहिए।

जल के अनगिनत प्रयोग

जल एक औषधि है और इसका उपयोग औषधि के समान उचित मात्रा में करना चाहिए। अक्सर देखा जाता है कि ज्यादातर लोग खाना खाने के तुरंत बाद खूब सारा पानी पीते हैं, जो कि आयुर्वेद की दृष्टि से उचित नहीं है; इसलिए ध्यान रखना चाहिए कि जब भी हम खाना खाएँ तो उसके तुरंत बाद पेट भरकर पानी नहीं पीना चाहिए। मुँह साफ करने के लिए एक घूँट पानी पीना चाहिए और तकरीबन डेढ़ घंटे के बाद हमें पानी पीना चाहिए।

ऐसा करने से हमने जो भोजन किया है वह बहुत जल्दी पचेगा, पाचन-क्रिया अच्छी बनी रहेगी और हमारे शरीर की जठराग्नि भी बहुत अच्छे से काम करेगी। इसके साथ ही हमने जो खाया है, उसका अच्छा पाचन होगा। इस संदर्भ में कुछ जरूरी बातें याद रख लें अगर हो सके तो इनको अवश्य अपनाएँ।

भोजन करने से लगभग 40 मिनट पहले पानी पीना चाहिए न कि भोजन शुरू करने के तुरंत पहले और खाना खाने के तुरंत बाद। हम एक-दो घूँट जो पानी पिएँ, वह ठंढा नहीं होना चाहिए। वह सामान्य या फिर हलका गुनगुना हो तो ज्यादा बेहतर होता है। अगर सुबह का नाश्ता करने के तुरंत बाद हमको बहुत तेज पानी की कमी महसूस हो रही हो या प्यास लगी हो तो उसके लिए अगर संभव हो तो हम संतरे या मौसमी या किसी और फलों के रस को पी सकते हैं और अगर दोपहर का भोजन करने के बाद हमको प्यास ज्यादा लग रही है तो खाने के तुरंत बाद हम दही की लस्सी या छाछ भी पी सकते हैं।

रात को खाने के तुरंत बाद दूध भी लिया जा सकता है। ऐसा करने से हमारे शरीर में कोई भी नुकसान होने की संभावना नहीं रहती; क्योंकि यह भोजन को पचाने में मददगार होता है। हम जब भी पानी पिएँ तो ऐसे पिएँ, जिस तरह से हम लोग चाय, कॉफी पीते हैं। एक-एक घूँट कर उसको पिएँ न कि एकदम से एक ही श्वास में सारा गिलास खतम कर दें।

ताँबे का एक पात्र (बरतन) लेकर रात में इसमें पानी भरकर रख लेना चाहिए और सुबह उठकर एक-एक घूँट करके थोड़ा-थोड़ा करके इस पानी को पीना चाहिए। अगर हम ताँबे के बरतन में पानी रखते हैं तो हमको उस पानी को उबालने की जरूरत नहीं है; क्योंकि उसमें वे सभी गुण आ जाते हैं, जो हमको पानी को उबालकर ठंढा करने के बाद मिलते हैं।

ताँबे के रखे हुए बरतन का पानी पीने से हमारे चेहरे पर भी निखार आता है। अगर हमको त्वचा संबंधी परेशानियाँ हैं या हम चमकती त्वचा को पाने के लिए तरह-तरह के प्रसाधन इस्तेमाल करके थक चुके हैं तो प्रतिदिन एक गिलास गरम पानी पीना शुरू कर देना चाहिए। हमारी त्वचा परेशानियों से मुक्त हो जाएगी और चमकने लगेगी। गरम पानी पीने से शरीर से विषैले तत्त्व बाहर निकल जाते हैं।

सुबह-सुबह खाली पेट एवं रात को खाने के बाद गरम पानी पीने से पाचन संबंधी समस्या समाप्त हो जाती है एवं कब्ज और गैस जैसी समस्याएँ परेशान नहीं करती हैं। भूख बढ़ाने के लिए भी एक गिलास गरम पानी बहुत मददगार साबित होता है। एक गिलास गरम पानी में एक नीबू का रस और काली मिर्च एवं स्वादानुसार नमक डालकर पीने से पेट का भारीपन कुछ ही देर में दूर हो जाता है। खाली पेट गरम पानी पीने से मूत्र संबंधी रोग समाप्त हो जाते हैं तथा छाती की जलन कम हो जाती है। वात से उत्पन्न रोगों में गरम पानी पीना अमृत के बराबर फायदेमंद माना गया है।

गरम पानी के रोजाना सेवन से रक्त-प्रवाह तेज होता है। गरम पानी पीने से शरीर का तापमान बढ़ता है और पसीने के माध्यम से शरीर के सारे विषैले पदार्थ बाहर हो जाते हैं। बुखार में प्यास लगने पर रोगी को ठंढे पानी के बजाय गरम पानी पीना चाहिए। इससे लाभ मिलता है। अगर शरीर के किसी हिस्से में गैस की वजह से दरद हो रहा है तो एक गिलास गरम पानी पीने से गैस बाहर निकल जाती है।

ज्यादातर पेट संबंधी रोग दूषित पानी की वजह से होते हैं। पानी को गरम करने के बाद ठंढा करके पीने से पेट की ज्यादातर बीमारियाँ पैदा ही नहीं होती हैं। गरम पानी पीने से शरीर में शक्ति का संचार होता है। इससे खाँसी और सरदी संबंधी रोग बहुत जल्दी दूर हो जाते हैं।

दमा, हिचकी और खराश आदि रोगों में तले एवं भुने पदार्थों के सेवन के बाद गरम पानी पीना फायदेमंद होता है। सुबह-सुबह खाली पेट एक गिलास गरम पानी में एक नीबू का रस मिलाकर पीने से शरीर को विटामिन-सी मिलता है। गरम पानी में एक नीबू का मिश्रण शरीर के प्रतिरक्षातंत्र को मजबूती प्रदान करता है। साथ ही पी.एच. का स्तर भी संतुलित रहता है। प्रतिदिन एक गिलास गरम पानी मस्तिष्क की कोशिकाओं के लिए एक बेहतरीन टॉनिक का काम करता है। यह सिर की त्वचा को नम करता है, जिससे इसके सूखने की परेशानी समाप्त हो जाती है।

वजन घटाने में भी गरम पानी का बहुत बड़ा योगदान है। खाना खाने के एक घंटे बाद गरम पानी पीने से मेटाबोलिज्म (चयापचय) बढ़ता है। अगर गरम पानी में थोड़ा नीबू का रस एवं कुछ बूँदें शहद की मिला दी जाएँ तो इससे शरीर सुडौल हो जाता है। हमेशा जवान दिखते रहने की चाहत रखने वाले लोगों के लिए गरम पानी एक अद्‌भुत औषधि के रूप में काम करता है। इस प्रकार यदि जल का समुचित उपयोग किया जाए तो यह एक अद्‌भुत औषधि का काम करता है। ❑

याज्ञवल्क्य प्रतिदिन अध्यात्म के गुह्य विषयों पर प्रवचन दिया करते थे। उसे सुनने निकट के कई संत-महात्मा और राजा जनक भी आया करते थे। कुछ अवसरों पर राजा जनक को पहुँचने में विलंब हो गया तो ऋषि याज्ञवल्क्य ने उनकी प्रतीक्षा करने के उपरांत ही अपना उद्‌बोधन आरंभ किया, पर यह देख संत-महात्माओं में कानाफूसी प्रारंभ हो गई कि याज्ञवल्क्य राजसी सम्मान की अपेक्षा में ऐसा करते हैं। जब यह बात याज्ञवल्क्य को पता चली तो उन्होंने जनक के जीवनमुक्त होने के प्रमाण को सिद्ध करने के लिए एक नाटक रचा।

अगले दिन उनके प्रवचन के मध्य उनका एक शिष्य दौड़ा हुआ आया और जनक से बोला—"राजन्! शीघ्र चलें, आपके प्रासाद में आग लग गई है।" जनक बोले—"जो मेरा पहले भी नहीं था, वो अब कैसे हो सकता है? ऋषिवर आप प्रवचन चालू रखें, मैं उसके बाद ही राजभवन लौटूँगा।" कुछ समय पश्चात वही शिष्य पुनः आया और महात्माओं से बोला—"संतगण! जल्दी आएँ, आग आपकी कुटियाओं तक आ पहुँची है।" यह सुनना था कि सारे संत-महात्मा वहाँ से भाग पड़े। आग तो कभी लगी ही नहीं थी, वह तो ऋषि याज्ञवल्क्य का रचा स्वांग था। सत्य पता लगते ही सबके सिर लज्जा से झुक गए।

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार— 144

दृष्टिबाधित विद्यार्थियों पर एक महत्त्वपूर्ण शोध

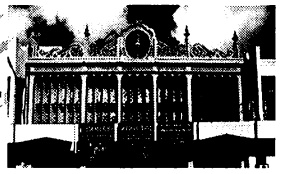

व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के समग्र विकास में शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा प्राप्त करना प्रत्येक बच्चे का अधिकार है और साथ ही यह समुन्नत और संतुलित जीवन-विकास की आवश्यकता भी है। धर्म, संस्कृति, राजनीति, उद्योग, विज्ञान, तकनीकी आदि सभी पक्षों में समझ और सामंजस्य बनाने में भी शिक्षा अत्यंत सहयोगी है। वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था में उक्त तथ्यों को स्वीकार किया गया है। शिक्षा का उद्देश्य ज्ञानवर्द्धन और कुशलता-विकास के साथ-साथ व्यक्तित्व-विकास और जीवनमूल्यों का संवर्द्धन करना भी है। सभी के लिए शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराना राष्ट्र के प्रमुख उद्देश्यों में से एक है; लेकिन शिक्षा के महत्त्व, आवश्यकता और उद्देश्यों को मान्यता देने के बावजूद यथार्थ के धरातल पर शिक्षा-व्यवस्था एवं शिक्षणपद्धति में अनेक कमियाँ और समस्याएँ मौजूद हैं।

शिक्षा का सभी को समान अधिकार होने के बावजूद हमारे समाज में लड़कियों की शिक्षा, गरीब बच्चों की शिक्षा, विकलांगों की शिक्षा में असमानता देखने को मिल जाती है। यद्यपि इन क्षेत्रों में भी धीरे-धीरे जागरूकता लाने और सभी को औपचारिक शिक्षा प्राप्त कराने के प्रयास किए जा रहे हैं, तथापि इस दिशा में ठोस और सही प्रयास किए जाने की आवश्यकता अभी भी है। शिक्षा से वंचित रहने वाले वर्गों में एक बड़ा वर्ग विकलांग बच्चों का है। विकलांग बच्चों की शिक्षा को हमारे समाज एवं शिक्षा तंत्र में वह स्थान नहीं मिल पाया है, जो सामान्य बच्चों के लिए है। ऐसे बच्चों की शिक्षा के लिए सरकार ही नहीं, अपितु परिवार और समाज की भी समन्वित भागीदारी आवश्यक है।

विकलांग बच्चों की शिक्षा में चुनौतियों को देखने और समाधान देने की दिशा में सार्थक प्रयासों को खोजने के उद्देश्य से देव संस्कृति विश्वविद्यालय के शिक्षाशास्त्र विभाग के अंतर्गत एक महत्त्वपूर्ण शोधकार्य संपन्न किया गया है। विकलांग बच्चों की शिक्षा का कार्य अत्यंत संवेदनशील है। इनमें भी नेत्रहीन बच्चों की शिक्षा अधिक संवेदनशील, चुनौतीपूर्ण और जटिल कार्य है। ऐसे में इस दिशा में शोधकार्य द्वारा वैज्ञानिक रीति से सही जानकारी प्राप्त करना और ऐसे बच्चों की शिक्षा को सुचारु बनाने की दिशा में ठोस मार्गदर्शन प्रदान करने वाला यह अध्ययन अत्यंत विशिष्ट है।

सन् 2016 में शोधार्थी सरिता द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या के विशेष संरक्षण एवं प्रोफेसर रमाकांत शर्मा के निर्देशन में यह शोध अध्ययन पूरा किया गया। इस शोध अध्ययन का विषय है—**ए स्टडी ऑफ इमोशनल इन्टेलीजेन्स, होम इनवायरमेन्ट एंड एकेडमिक एन्जाइटी ऑफ विजुअली इम्पेयर्ड स्टूडेन्ट इन रिलेशन टू देयर एकेडमिक एचिवमेन्ट**। इस अध्ययन के माध्यम से शोधार्थी ने नेत्रहीन विद्यार्थियों में भावनात्मक योग्यता, घरेलू वातावरण, शैक्षणिक दुश्चिंतता का उनकी शैक्षणिक उपलब्धियों के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन किया है। साथ ही ऐसे विद्यार्थियों में महिला वर्ग और पुरुष वर्ग की शिक्षण चुनौतियों और भिन्नता को भी उजागर करने का प्रयत्न किया है।

प्रयोगात्मक एवं वर्णनात्मक विधि पर आधृत इस अध्ययन में वैज्ञानिक रीति से तथ्यों, आँकड़ों का संग्रहण कर उपादेयी परिणामों की विवेचना प्रस्तुत की गई है। प्रयोगात्मक अध्ययन को पूर्ण करने के लिए शोधार्थी द्वारा उत्तराखंड राज्य के देहरादून व हरिद्वार स्थित तीन अंधविद्यालयों से 300 विद्यार्थियों का चयन किया गया जिसमें 150 पुरुष एवं 150 महिला वर्ग के थे। इन सभी विद्यार्थियों की उम्र 14 से 18 वर्ष के मध्य थी। शोधार्थी ने चयनित विद्यार्थियों की मनोसामाजिक अवस्था एवं उनकी शिक्षण-प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले कारकों को ज्ञात करने के लिए जिन शोध उपकरणों को प्रयुक्त किया; वे हैं—डॉ० एस० के० मंगल एवं डॉ० शुभ्रा मंगल द्वारा निर्मित(1999) 'इमोशनल इन्टेलीजेन्स इन्वेन्ट्री टेस्ट', डॉ० ए० के० सिंह तथा डॉ० ए० सेन गुप्ता द्वारा निर्मित (2009) 'एकेडमिक एन्जाइटी स्केल फॉर चिल्ड्रन डेवलपमेंट' तथा के० एस० मिश्रा द्वारा निर्मित (1989) 'होम इन्वायरमेन्ट इन्वेन्ट्री टेस्ट।' इसके साथ ही सभी विद्यार्थियों

की शैक्षणिक उपलब्धियों को जानने के लिए उनके परीक्षा परिणामों को भी अध्ययन में सम्मिलित किया गया।

उपकरणों के द्वारा आँकड़ों को संगृहीत करने के लिए स्वयं शोधार्थी द्वारा प्रत्येक चयनित विद्यार्थी से व्यक्तिगत स्तर पर बातचीत की गई एवं टेस्ट के प्रश्नों को बोलकर उत्तर प्राप्त किए गए। अध्ययन से प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर शोध परिणाम के रूप में शोधार्थी ने पाया कि घरेलू वातावरण की सकारात्मकता का नेत्रहीन बच्चों की शैक्षणिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव पड़ता है। लड़कों की तुलना में लड़कियों पर पारिवारिक एवं सामाजिक स्तर पर ज्यादा संवेदनशीलता अपनाने की आवश्यकता होती है। साधारण विद्यार्थियों की तुलना में नेत्रहीन बच्चों में भावनात्मक योग्यता का भी अत्यंत महत्त्व है, क्योंकि इससे वे सजगता और अंत:-बाह्य सामंजस्य स्थापित कर पाते हैं। ऐसे बच्चों के लिए घरेलू और स्कूली वातावरण का उनकी शैक्षणिक उपलब्धियों और व्यक्तित्व विकास पर अत्यंत प्रभाव पड़ता है।

इस अध्ययन के निष्कर्ष में कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण समाधान सामने आए हैं, जिन्हें अपनाकर नेत्रहीन विद्यार्थियों की शिक्षा को प्रभावशाली और सार्थक स्वरूप प्रदान किया जा सकता है। नेत्रहीन बच्चों को शिक्षा ग्रहण करने में आने वाली परेशानियों तथा उनके आंतरिक व्यक्तित्व में उत्पन्न कमजोरियों को दूर करने में सर्वप्रथम घर के सकारात्मक वातावरण की आवश्यकता होती है। ऐसे वातावरण में ही उनके भीतर भावनात्मक योग्यता का विकास होता है जो उन्हें आत्मविश्वास, सजगता, समझ और सामंजस्य जैसे गुणों से परिपूर्ण बनाती है।

नेत्रहीनों में लड़कों की तुलना में लड़कियों में शैक्षणिक चिंता, योग्यता, शैक्षणिक उपलब्धियाँ आदि को उच्चस्तर पर पाया गया, लेकिन घरेलू नकारात्मक वातावरण का नेत्रहीन बच्चों के व्यक्तित्व एवं उनकी शैक्षणिक उपलब्धियों पर गलत प्रभाव पड़ता है, जो उनके जीवन में अनेक समस्याओं को एवं व्यक्तित्वजन्य विकृतियों को पैदा कर देता है। नियंत्रण, सजा, सामाजिक उपेक्षा जैसे कई कारक इन बच्चों के भावनात्मक, सामाजिक और शैक्षणिक स्तर को प्रभावित करते हैं। ऐसे में घरवालों, रिश्तेदारों व समाज के लोगों—सभी की जिम्मेदारी है कि नेत्रहीन बच्चों के जीवन का समग्र विकास कराएँ, ताकि शिक्षा के मौलिक अधिकार को प्राप्त कर ऐसे बच्चे भी अपने जीवनस्तर को ऊँचा उठा सकें।

इस अध्ययन के परिणामों के आधार पर शोधार्थी ने नेत्रहीन बच्चों की शिक्षा से संबंधित कुछ महत्त्वपूर्ण परामर्श बिंदु प्रस्तुत किए हैं, जिन्हें अभिभावक, शिक्षक और स्कूल प्रशासन द्वारा अपनाकर ऐसे बच्चों की शैक्षणिक उपलब्धि को और अधिक गुणवत्तापूर्ण बनाया जा सकता है। शोधार्थी का मत है कि ऐसे बच्चों को सुरक्षा संरक्षण की आवश्यकता होती है, परंतु अत्यधिक दबाव भी ठीक नहीं है। अत्यधिक नियंत्रण इनमें हीन भावनाओं को जन्म देता है और कई बार ऐसे में बच्चे आत्महत्या की ओर कदम बढ़ा लेते हैं। शिक्षक और प्रशासन को भी उनसे मित्रतापूर्ण व्यवहार करना चाहिए। नेत्रहीन बच्चों की मानसिक अवस्था विशेषकर भावनात्मक योग्यता का मापन समय-समय पर शिक्षकों द्वारा किया जाना चाहिए, ताकि समय पर ऐसे बच्चों को उचित सहयोग दिया जा सके। इसी तरह चिंता एवं तनाव की अवस्था को जानना भी आवश्यक है।

एक सीमा तक शैक्षणिक चिंता पढ़ाई के लिए ठीक है, लेकिन अत्यधिक चिंता से शैक्षणिक उपलब्धियों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसके लिए अभिभावक, शिक्षक और प्रशासक—तीनों स्तर पर बच्चों को प्रेरित करने तथा सकारात्मक संवाद बनाए रखने की आवश्यकता होती है। शिक्षण कार्य में भी ऐसे माध्यमों का प्रयोग करना चाहिए, जिनसे नेत्रहीन बच्चों को सीखने-समझने में सहजता हो और वे अच्छे अंक प्राप्त कर सकें।

ऐसे बच्चों की भावनात्मक क्षमताओं के विकास के लिए शिक्षकों को भी प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। साथ ही भावनात्मक योग्यता के विकास से संबंधित ऐसी कार्यशालाओं का आयोजन हो, जिनमें अभिभावक, शिक्षक और बच्चे आपस में संवाद स्थापित कर सकें। इस अध्ययन का उद्देश्य नेत्रहीन विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धियों को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन कर उनकी शिक्षण-प्रक्रिया को और अधिक सुगम, व्यापक और प्रभावकारी बनाने के उपाय खोजना है। साथ ही यह अध्ययन शिक्षा जैसे महत्त्वपूर्ण और मौलिक अधिकार से वंचित विशेष विद्यार्थी वर्ग (विकलांग) की शिक्षा के लिए आवश्यक संवेदनशील पहलुओं को प्रस्तुत कर इनके प्रति परिवार, समाज और विद्यालय की जिम्मेदारियों से अवगत कराता है। ❑

सोच-समझकर करें वाणी का प्रयोग

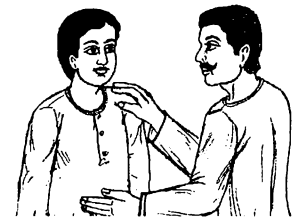

वाणी ईश्वरप्रदत एक दैवी उपहार है, जिसे भारतीय शास्त्रों में सरस्वती का निवासस्थान माना गया है। वाक्शक्ति के रूप में इसका वर्णन वहाँ आता है। यहाँ वाणी के माध्यम से प्रकट ध्वनि को शब्दब्रह्म तक की उपमा दी गई है। मंत्रशक्ति के रूप में इसका ही सूक्ष्म स्वरूप प्रकट होता है। इसकी सामर्थ्य में वरदान से लेकर शाप के घटित होने के किस्से शास्त्रों में भरे पड़े हैं।

लोक-व्यवहार में वाणी का अपना महत्त्व है, जो सामाजिक जीवन में सफलता से लेकर आंतरिक शांति-संतोष का आधार बनती है। वाणी का स्थूलस्वरूप जहाँ वैखरी के माध्यम से मुख द्वारा उच्चारित किया जाता है, तो वहीं परा, पश्यंती और मध्यमा के माध्यम से अंत:करण की वाणियाँ प्रस्फुटित होती हैं। इससे भी आगे शास्त्रों में शब्द को ब्रह्म की उपमा दी गई है। शब्द की बड़ी सामर्थ्य बताई गई है।

जब हम किसी शब्द का उच्चारण करते हैं, तो उसका प्रभाव न केवल व्यक्ति के गुप्त मन पर पड़ता है, अपितु सारा संसार भी इससे प्रभावित होता है; क्योंकि शब्द का कभी लोप नहीं होता। प्रत्येक शब्द वायुमंडल में गूँजता रहता है और वह समानधर्मी व्यक्ति के गुप्त मन से टकराकर उसमें तदनुकूल प्रतिक्रिया उत्पन्न करता रहता है।

यह अनुभवसिद्ध बात है कि जिसके प्रति हम शब्दों द्वारा अच्छी भावना प्रकट करते हैं, वह व्यक्ति अनजाने ही हमारा प्रेमी और शुभचिंतक बन जाता है। इसके विपरीत जिनके बारे में हमारे विचार या शब्द कलुषित होते हैं, वो अनायास ही हमारे अहितचिंतक शत्रु बन जाते हैं अर्थात शुभ एवं मंगल वाणी से आप्त जनों एवं सर्वसाधारण समाज में सद्भावना का प्रचार होता है, जिससे समाज का वातावरण आनंद और उल्लासपूर्ण बनता है। प्रत्येक शब्द हमारे अंत:करण पर एक अमिट गुप्त छाप छोड़ जाता है, जो हमारे स्वभाव और चरित्र के निर्माण में योगदान देता है।

शब्दों की इस अतुलनीय सामर्थ्य को देखते हुए हमारे मनीषियों और शास्त्रों ने हमें प्रत्येक शब्द के प्रति अत्यंत सावधान रहने का संकेत दिया था तथा वाणी को सदा मधुर, पवित्र एवं हितकारी बनाए रखने का निर्देश दिया था। गोस्वामी तुलसीदास जी के शब्दों में—'तुलसी मीठे वचन ते, सुख उपजत चहुँ ओर। वशीकरण एक मंत्र है, तज दे वचन कठोर।।' इसी तरह 'कागा काको धन हरे, कोयल काको देय। मीठी वाणी बोलकर, जग बस में कर लेय।।' अर्थात मीठे वचन बोलकर सारे जग को अपने वश में किया जा सकता है। दूसरों को अपना बनाया जा सकता है। लोगों के हृदय में अपना स्थान पाया जा सकता है। साथ ही शास्त्रों में वाणी के सत्य एवं कल्याणकारी स्वरूप पर भी बल दिया गया है।

महर्षि व्यास योगदर्शन के भाष्य में कहते हैं कि सत्य का प्रयोग जीवों के हित के लिए करना चाहिए, अहित के लिए नहीं; जिसके बोलने से प्राणियों की हानि होती हो वह सत्य होते हुए भी असत्य एवं पाप ही माना जाएगा। ऐसा अविवेकपूर्ण सत्य बोलने से दूसरे निर्दोषों को कष्ट उठाना पड़ता है और वक्ता को पाप लगता है। इसलिए परिस्थिति को भली प्रकार विचारकर विवेक का सहारा लेकर सबके लिए कल्याणकारी हो, ऐसी वाणी ही बोलें।

इस तरह वाणी अमृत और विष, दोनों का काम करती है। जो वाणी सत्य, उत्साह तथा उल्लास बढ़ाने वाली, निष्कपट, मधुर तथा हितकर होगी, वही अमृततुल्य कहलाएगी। इसके विपरीत जिस वाणी में कठोरता, अहंमन्यता, उपहास, कटुता, द्वेषभाव, छिछोरापन आदि होगा—वह अपने और दूसरों के लिए भी विषमय एवं हानिकारक होगी।

वाणी से लोक-कल्याण के साथ आत्मनिर्माण का प्रयोजन भी सिद्ध होता है। अपने मन को हमेशा सत्संकल्पपूर्ण वाणी से संबोधित करते हुए उसे सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी जा सकती है। मन को एकाग्र और शांत कर

एकांत में ऐसे शब्दों का उच्चारण किया जा सकता है, जिससे उसे नई चेतना और नई प्रेरणा मिले। इस प्रकार के आत्मनिर्देशपूर्ण शब्दों द्वारा व्यक्ति अपनी मानसिक शक्ति और आत्मबल को पर्याप्त मात्रा में बढ़ाकर जीवन को पवित्र, सुखी और संपन्न बना सकता है। वाणी को सशक्त एवं प्रभावी बनाने के लिए मौन का अभ्यास किया जा सकता है।

महात्मा गांधी कहा करते थे कि मौन सर्वोत्तम भाषण है। अगर बोलना ही हो तो कम-से-कम बोलो। एक शब्द से ही काम चल जाए, तो दो न बोलो। फ्रैंकलिन के शब्दों में—चींटी से अच्छा कोई उपदेश नहीं देता और वह मौन रहती है। कार्ल इल ने कहा है—मौन में शब्दों की अपेक्षा अधिक वाक्शक्ति होती है। इसके विपरीत वाणी के दुरुपयोग से हमारी शक्ति का एक बड़ा अंश नष्ट हो जाता है। इसीलिए इंद्रिय-संयम के लिए जैसे ब्रह्मचर्य का महत्त्व है, वैसे ही वाणी के संयम के लिए मौन की महिमा बताई गई है। इसके विपरीत वाचालता, व्यर्थप्रलाप हानिकारक सिद्ध होते हैं।

एक तो इनसे ऊर्जा का अनावश्यक क्षय होता है, दूसरा इससे व्यक्तित्व का हलकापन ही प्रकट होता है। फिर यह भी नहीं पता कि अपने बहाव में जबान कब फिसल जाए कि अर्थ का अनर्थ निकल जाए, जो बाद में स्वयं के लिए ही गंभीर पश्चात्ताप का कारण बन जाए। निस्संदेह मौन में बड़ी शक्ति है। वाणी-संयम या यथासंभव मौन से वाणी को बल मिलेगा।

सप्ताह या महीने में एक दिन मौन रहकर उस दिन केवल आत्मचिंतन-मनन और सच्चिंतन का अभ्यास किया जा सकता है। उतना ही बोलिए, जितना आवश्यक हो। सार रूप में वाणी का सधा हुआ प्रयोग ही उचित रहता है। बुद्धिमान लोग वाणी का प्रयोग चुने हुए शब्दों में करते हैं। छलनी से छानकर जैसे भूसी अलग कर दी जाती है, वैसे ही मन से शब्दों को छानकर जो कहना चाहिए, वे उतना ही कहते हैं। वाणी का सदुपयोग एक तरह की साधना ही है, जिसका अभ्यास सबको करना ही चाहिए। ❑

वरदराज छोटी-सी उम्र का लड़का था। उसका पढ़ने में बहुत मन नहीं लगता था। कई-कई घंटे व्यतीत कर देने के बाद भी उसे कुछ याद नहीं होता था। आखिर एक दिन दुःखी होकर वह घर छोड़कर भाग गया। रात एक सराय में गुजारनी पड़ी। घर की याद कर-कर के नींद नहीं आ रही थी तो उसकी दृष्टि जमीन पर उलटे पड़े एक कीड़े पर गई। कीड़ा बार-बार सीधे होने का प्रयास करता, पर फिर उलटा हो जाता। तीस-चालीस बार प्रयत्न करने पर भी वह सीधा न हो पाया। आखिरकार उसने इकतालीसवीं बार जोर लगाया और सीधा हो गया। इस घटना का वरदराज के हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा। वह तुरंत घर लौट गया और पूरे मनोयोग के साथ अध्ययन प्रारंभ किया। वही वरदराज आगे चलकर संस्कृत का उद्भट विद्वान बना । असफलता केवल यह सिद्ध करती है कि सफलता का प्रयास पूरे मन के साथ नहीं किया गया और जब पूरे जोर के साथ प्रयास किया जाता है तो सफलता निश्चित मिलती है।

प्लास्टिक की खोज की कहानी

प्लास्टिक पर्यावरण के लिए अत्यंत घातक होता है। यह प्रदूषण का एक बड़ा कारण है। आज विश्व का प्रत्येक देश प्लास्टिक से उत्पन्न प्रदूषण की अत्यंत विनाशकारी समस्याओं से जूझ रहा है। हमारे देश में तो प्लास्टिक-प्रदूषण से नगरीय पर्यावरण बुरी तरह प्रभावित हो रहा है। नगरों में प्लास्टिक थैलियों को खाकर भारी संख्या में पशु और पक्षियों की मृत्यु हो रही है।

प्लास्टिक नैसर्गिक रूप से विघटित होने वाला पदार्थ नहीं है। इस कारण एक बार निर्मित हो जाने के बाद यह प्रकृति में स्थायी तौर पर बना रहता है। प्रकृति में इसे नष्ट कर सकने वाले किसी सक्षम सूक्ष्म जीवाणु के अभाव के कारण यह कभी भी पूर्णरूपेण नष्ट नहीं हो पाता है। इसको नष्ट करने वाले तत्त्वों के अभाव में एक तरह का असंतुलन उत्पन्न होता है और उस कारण संपूर्ण वातावरण प्रदूषित होता है।

आधुनिक युग में प्लास्टिक एक प्रमुख पदार्थ माना जाता है, जिसका उपयोग हमारे दैनिक जीवन में अनेक प्रकार से होता है। प्लास्टिक के कई लाभ भी हैं। लकड़ी तथा कागज की तरह प्लास्टिक सड़ता नहीं है तथा लोहे की तरह इसमें जंग नहीं लगता। प्लास्टिक से निर्मित वस्तुएँ यदि गिर भी जाएँ तो टूटती नहीं हैं। बिजली के खतरों से बचने के लिए विद्युत उपकरण प्लास्टिक से बनाए जाते हैं। आवश्यकतानुसार प्लास्टिक में विभिन्न रासायनिक पदार्थ मिलाकर इसे मुलायम, कठोर, पारदर्शी तथा किसी भी रंग का बनाया जा सकता है।

प्लास्टिक विगत एक शताब्दी की विकास यात्रा के केंद्र में रहा है। इसका इतिहास भी कम रोचक नहीं है। प्लास्टिक का निर्माण सर्वप्रथम सन् 1868 में संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रसिद्ध वैज्ञानिक जॉन वेसली हयात द्वारा किया गया था। प्लास्टिक की खोज वस्तुत: एक प्रतियोगिता के कारण हुई। संयुक्त राज्य अमेरिका में बिलियर्ड बॉल के निर्माण के लिए उस समय सामान्य तौर पर हाथी दाँत का उपयोग किया जाता था, परंतु हाथी दाँत विदेशों से आयात करना पड़ता था।

विदेशों से आयात करने में यह बहुत महँगा पड़ता था और अनेक कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ता था। इसी कारण संयुक्त राज्य अमेरिका के अनेक उद्योगपति हाथी दाँत के एक ऐसे विकल्प की खोज में थे, जो सस्ता भी हो तथा इसके लिए आयात पर निर्भर न रहना पड़े। इसी प्रकार के वैकल्पिक पदार्थ की खोज करने के लिए सन् 1868 में एक प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इस प्रतियोगिता में हाथी दाँत के सर्वोत्तम विकल्प की खोज करने वाले को दस हजार अमेरिकी डॉलर पुरस्कार देने की घोषणा की गई।

जॉन वेसली हयात नामक रसायनविद् ने इस प्रतियोगिता में भाग लेकर अपनी किस्मत आजमाने का निश्चय किया। उसने हाथी दाँत के विकल्प के रूप में पाइरोक्सिलीन नामक एक सेलुलोज नाइट्रेट को आजमाने की योजना बनाई। इससे कुछ ही समय पूर्व इंग्लैंड के प्रसिद्ध वैज्ञानिक एलेक्जेंडर पार्कस ने अनुमान लगाया था कि पाइरोक्सिलीन को कपूर में मिलाकर जो मिश्रण तैयार होता है, वह काफी लचीले स्वभाव का होगा तथा इसे आसानी से किसी भी आकृति में ढाला जा सकेगा, परंतु पार्कस को इस दिशा में वांछित सफलता नहीं मिल पाई थी।

जॉन वेसली हयात ने पार्कस द्वारा बनाई गई विधि में कुछ संशोधन किए। उन्होंने पार्कस द्वारा बताए गए मिश्रण पर काफी अधिक दबाव तथा तापमान दिया। इसके फलस्वरूप एक प्रकार का प्लास्टिक पदार्थ तैयार हुआ, उसका नाम हयात ने सेलुलॉयड रखा था, परंतु हयात जिस चीज की खोज में थे, वह नहीं मिल पाई, जिसके कारण वे दस हजार डॉलर का पुरस्कार प्राप्त करने में असफल रहे, परंतु इस प्रयोग से उन्हें इतना तो पता चल गया था कि इस पदार्थ को अनेक वस्तुओं के निर्माण में हाथी दाँत के विकल्प के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है।

हयात द्वारा विकसित किए गए रासायनिक पदार्थ से शुरू-शुरू में नकली दाँत, कमीज के कॉलर इत्यादि का निर्माण किया जाता था। कुछ समय बाद इस रासायनिक

पदार्थ से फोटोग्राफिक फिल्म, स्वचालित वाहनों हेतु खिड़कियों के परदे तथा विंडस्क्रीन इत्यादि वस्तुएँ बनाई जाने लगीं।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में विल्लेलम फ्रिस्क तथा एडोल्फ स्पिट्लर नामक दो जर्मन रसायन वैज्ञानिकों ने ब्लैक बोर्ड के निर्माण हेतु स्लेट के विकल्प ढूँढ़ने का प्रयास शुरू किया। कई प्रयोगों के बाद उन्होंने यह पता लगाने में सफलता प्राप्त की कि कैसीन पर फार्मेल्डिहाइड की अभिक्रिया से जानवरों के सींग से मिलता-जुलता एक प्रकार का प्लास्टिक पदार्थ प्राप्त होता है, जिसका उपयोग देखते हुए उसका व्यावसायिक उत्पादन प्रारंभ हो गया।

इस पदार्थ का व्यापारिक नाम गैलालीथ रखा गया। गैला तथा लीथ ग्रीक भाषा के शब्द हैं, जिनका अर्थ क्रमशः दूध तथा पत्थर होता है। इस प्रकार गैलालीथ का शाब्दिक अर्थ हुआ दूधिया पत्थर। चूँकि कैसीन प्लास्टिक का रंग दूध की तरह उजला था तथा उसकी मजबूती पत्थर के समान थी, इसीलिए इसे सम्मिलित रूप से गैलालीथ कहा गया।

उद्योग जगत में गैलालीथ काफी उपयोगी पदार्थ सिद्ध हुआ तथा इससे कई वस्तुएँ बनाई जाने लगीं। प्लास्टिक उद्योग के विकास की दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान देने वाले एक अन्य प्रमुख वैज्ञानिक थे बेल्जियम मूल के अमेरिकी नागरिक डॉ० एडोल्फ बफन, प्रसिद्ध जर्मन रसायनविद् डॉ० लियो बैकलैंड।

बेयर ने सन् 1872 में किए गए प्रयोगों से पता लगाया था कि जब अनेक प्रकार के फीनॉल तथा एल्डिहाइड अभिक्रिया करते हैं तो एक रालनुमा पदार्थ तैयार होता है। बेयर द्वारा विकसित किए गए इस रालदार पदार्थ को सन् 1909 तक किसी भी उपयोग में नहीं लाया जा सका था, परंतु सन् 1909 में फीनॉल तथा फार्मेल्डिहाइड की अभिक्रिया में कुछ परिवर्तन करके बेकलैंड एक ऐसा प्लास्टिक निर्मित करने में सफल हुए, जिसका उपयोग कई उद्योगों में किया जा सकता था। बेकलैंड के नाम पर ही इस नए प्लास्टिक का नामकरण बेकेलाइट किया गया। इसे ताप एवं दाब के प्रभाव में विभिन्न आकृतियों में ढाला जा सकता था।

घोल के रूप में इस पदार्थ का उपयोग लकड़ी के तख्तों, कपड़ों तथा कागज इत्यादि को चिपकाने के लिए गोंद के समान किया जा सकता था। इस प्रकार बेकेलाइट सबसे पहला व्यावसायिक कृत्रिम राल था। सन् 1909 से अब तक हुए अनेक प्रयासों के फलस्वरूप ही प्लास्टिक का उपयोग आज सर्वत्र किया जा रहा है।

आज प्लास्टिक से निर्मित वस्तुएँ हमारे जीवन के हर क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना चुकी हैं। आधुनिक काल को यदि प्लास्टिक युग कहा जाए तो गलत नहीं होगा। इसका दूसरा पक्ष अत्यंत हानिकारक है। यह प्रदूषण फैलाता है। प्लास्टिक प्रदूषण से मुक्ति के लिए समाज के सभी वर्गों को ऐसा करने के लिए तैयार करना चाहिए।

दैनिक जीवन की अपनी आवश्यकताओं में प्लास्टिक की मात्रा को धीरे-धीरे कम करके वैकल्पिक साधनों का उपयोग करना चाहिए। इससे प्लास्टिक के उत्पादन, विक्रय और उपयोग तीनों में धीरे-धीरे कमी आने लगेगी। प्लास्टिक का पुनर्चक्रण—रिसाइक्लिंग भी एक समाधान है, परंतु फिलहाल पुनर्चक्रण का प्रतिशत बहुत कम है। पुनर्चक्रण की यह प्रक्रिया भी प्रदूषणकारी है। इसलिए मानवता के भविष्य के लिए प्लास्टिक से मुक्ति ही उचित मार्ग होगा। समय रहते उचित कदम उठा लेना चाहिए और प्रदूषण की मार से बचने के उपाय ढूँढ़ना चाहिए। ❑

दो शिष्य अपने को बड़ा बताते हुए एकदूसरे से झगड़ा कर रहे थे। जब वे किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सके तो अपने गुरु के पास पहुँचकर उनसे यह समस्या कही। गुरु बोले—"जो अपने को छोटा और दूसरे को बड़ा बोलता है, उसी को बड़ा माना जाता है। तुममें से जो ऐसा आचरण कर रहा है, वही बड़ा है।" दोनों शिष्यों के सिर लज्जा से झुक गए।

युगगीता —251

क्रूर कर्मों के कर्ता होते हैं आसुरी व्यक्तित्व

(श्रीमद्भगवद्गीता के दैवासुरसम्पद्विभागयोग नामक सोलहवें अध्याय की नौवीं किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय के आठवें श्लोक की व्याख्या इससे पूर्व की किस्त में प्रस्तुत की गई थी। इस श्लोक में श्रीभगवान आसुरी प्रवृत्ति वाले मनुष्यों के लक्षणों को और विस्तार में बताते हैं। वे कहते हैं कि आसुरी प्रवृत्ति वाले मनुष्यों की ऐसी मान्यता होती है कि यह जगत् आश्रयरहित, सर्वथा असत्य, बिना ईश्वर के, अपने आप केवल स्त्री-पुरुष के संयोग से उत्पन्न है, अतः केवल काम ही इसका कारण है। इसके अतिरिक्त इस संसार के होने का अन्य क्या कारण हो सकता है ? यहाँ ये कहने के पीछे भगवान श्रीकृष्ण का अभिप्राय यह है कि आसुरी स्वभाव वाले व्यक्ति प्रवृत्ति-निवृत्ति का भेद तो नहीं ही जानते और साथ ही वे ये भी कहते हैं कि इस चराचर जगत् का अर्थात संसार का धर्म-अधर्म के रूप में कोई आधार या आश्रय नहीं है और जब इसका कोई आश्रय नहीं है तो ईश्वर का अस्तित्व ही संदिग्ध हो जाता है। वे ये भी कहते हैं कि इस जगत् का कोई रचयिता, शासक एवं नियामक नहीं है। उनके अनुसार यह संसार बिना किसी ईश्वरीय हस्तक्षेप के मात्र स्त्री-पुरुष के परस्पर कामवश संयोग के कारण उत्पन्न हुआ है, अतः काम ही इसके अस्तित्व का एकमात्र कारण है।

ऐसा सोचने व ऐसा कहने के पीछे आसुरी वृत्ति वाले मनुष्यों का अभिप्राय यह है कि इस जगत् में हमें मनमाफिक भोगों को भोग लेना चाहिए। जब उनके अनुसार यहाँ कोई ईश्वर, कोई कर्म विधान, कोई जीवन-उद्देश्य नहीं है तो फिर यहाँ जो क्षणिक सुख हमें मिलता है, उसी को भोगने में हमें हमारा जीवन लगा देना उचित है। स्पष्ट है कि ऐसी सोच वाले लोगों का विश्वास दायित्व बोध या कर्त्तव्य कर्म में नहीं है। इसीलिए उनको चोरी, अपराध, हिंसा, व्यभिचार, दुराचार करने में कोई बुराई नजर नहीं आती। वे ऐसा सोचा करते हैं कि यदि कुकर्म करके भी सुख मिल जाता हो तो उन कुकर्मों को निस्संकोच कर लेना चाहिए; क्योंकि जीवन निरर्थक है, इसका कोई परम उद्देश्य नहीं है। ऐसा चिंतन आसुरी स्वभाव वाले व्यक्तियों का होता है।]

इसके आगे श्रीभगवान कहते हैं—

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः॥ 9॥

शब्दविग्रह—एताम्, दृष्टिम्, अवष्टभ्य, नष्टात्मानः, अल्पबुद्धयः, प्रभवन्ति, उग्रकर्माणः, क्षयाय, जगतः, अहिताः।

शब्दार्थ—इस (**एताम्**), मिथ्या ज्ञान को (**दृष्टिम्**), अवलंबन करके (**अवष्टभ्य**), जिनका स्वभाव नष्ट हो गया है (तथा) (**नष्टात्मानः**), जिनकी बुद्धि मंद है (वे) (**अल्पबुद्धयः**), सबका अपकार करने वाले (**अहिताः**), क्रूरकर्मी मनुष्य (केवल) (**उग्रकर्माणः**), जगत् के (**जगतः**), नाश के लिए ही (**क्षयाय**), समर्थ होते हैं (**प्रभवन्ति**)।

अर्थात इस दृष्टि का आश्रय लेने वाले जो मनुष्य अपने नित्य स्वरूप को नहीं मानते तथा जिनकी बुद्धि तुच्छ या मंद है, जो सबका अपकार करने वाले क्रूरकर्म ही करना जानते हैं, उन मनुष्यों की सामर्थ्य का उपयोग जगत् का नाश करने में ही होता है। प्रकृति हर तरह के व्यक्तियों से उनकी प्रवृत्ति के अनुसार कर्म करा ही लेती है। इसीलिए श्रीभगवान यहाँ पर कहते हैं कि ऐसी आसुरी प्रवृत्ति वाले मनुष्य जिनका स्वभाव नष्ट हो गया है, वे केवल शरीर को ही अस्तित्व मानकर बैठे हैं और उसी के सुखों की प्राप्ति में

अपना जीवन झोंकने को तैयार हैं, उनकी बुद्धि भी तुच्छ होती है, उनके कर्म भी क्रूर व अहितकारी होते हैं और इसीलिए उनकी सामर्थ्य का उपयोग मात्र जगत् का विनाश करने में ही किया जा सकता है।

श्रीभगवान यहाँ कहते हैं कि आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य जो प्रवृत्ति-निवृत्ति के भेद को नहीं समझते, जिनका आचरण न तो श्रेष्ठ होता है और न ही करने योग्य होता है—ऐसे मिथ्या ज्ञान का अवलंबन करने वाले मनुष्य अपने स्वभाव को नष्ट कर बैठते हैं। मिथ्या ज्ञान का तात्पर्य उस सोच से है जिसमें वे ये मानते हैं कि इस जगत् का कोई आश्रय-आधार नहीं; यहाँ कोई ईश्वर, कोई कर्म विधान नहीं; यहाँ भोग ही सब कुछ है, योग जैसा यहाँ कुछ भी नहीं; यहाँ साधना जैसा कुछ भी नहीं है; यहाँ जीवन का कोई लक्ष्य, कोई उद्देश्य, कोई गंतव्य नहीं और इसीलिए यहाँ जीवन को मात्र भोगों की प्राप्ति में झोंक देने में कोई गलत बात नहीं।

स्पष्ट है कि जो भी व्यक्ति इस तरह की धारणाओं व मान्यताओं के आधार पर अपना जीवन जिएगा, वह अपने नित्यस्वरूप से अपरिचित रह जाएगा, वह अपना स्वभाव निश्चित रूप से भुला बैठेगा, गँवा बैठेगा; क्योंकि आत्मा का तो स्वभाव ही परम शांति में, परम संतुलन में छिपा हुआ है। जब तक जीवात्मा परमात्मा से एकरूप, एकाकार न हो सके, तब तक वह अपने स्वभाव से विमुख ही है। जो इस मान्यता से विपरीत चिंतन को अपने जीवन का मूलमंत्र बनाकर बैठा है, उसका जीवन फिर एक त्रासदी में, दरद में, पीड़ा में बदल जाता है।

ऐसे व्यक्ति की बुद्धि भी धीरे-धीरे मंद, तुच्छ व निकृष्ट हो जाती है। आधुनिक समय में हम बुद्धि का उपभोग मात्र तर्क करने में, निंदा करने में, आलोचना करने में, दूसरों की कमियाँ ढूँढ़ने में करते हैं। श्रीभगवान कहते हैं कि ये तुच्छ बुद्धि के प्रतीक हैं। सही अर्थों में मनुष्य के भीतर उपलब्ध बुद्धि की क्षमता, वो क्षमता है जो जीवन के आर-पार देखने की सामर्थ्य रखती हो, जो मनुष्य के भीतर निहित संभावनाओं के जागरण की सामर्थ्य रखती हो।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि आसुरी वृत्ति वाले मनुष्यों का स्वभाव तो नष्ट होता ही है, साथ ही उनकी बुद्धि भी अल्प, मंद या निकृष्ट हो जाती है। ऐसे लोग फिर परमात्मा की उपस्थिति को तर्क से सिद्ध करने का आग्रह करने लगते हैं। सच यह है कि जीवन के महत्त्वपूर्ण सत्य अनुभव किए जा सकते हैं, सिद्ध नहीं किए जा सकते। जिस तरह से न तो सौंदर्य को सिद्ध किया जा सकता है, उसी तरह से परमात्मा को भी सिद्ध नहीं किया जा सकता है। आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य इसी तुच्छ दौड़ में अपनी बुद्धि को लगा देते हैं।

ऐसी वृत्ति वाले मनुष्यों के भीतर जो ऊर्जा शेष रह जाती है, वो विध्वंसक होती है। उस ऊर्जा का उपयोग फिर किसी सार्थक कार्य में नहीं किया जा सकता। उसके द्वारा फिर मात्र ध्वंस का कार्य कराया जा सकता है। इस संसार में मूलरूपेण चार प्रकार की आत्माएँ हैं। पहली तो वे हैं; जो विशुद्ध रूप से प्रकाशित हैं, पवित्र हैं, दैवी ऊर्जा से आप्लावित हैं। ऋषि, मुनि, अवतार, सिद्ध, संत—इसी श्रेणी में आते हैं।

इसके बाद वे आत्माएँ हैं, जिनमें सात्त्विक भाव प्रबल हैं, पर तामसिक या अधोगामी प्रवृत्तियाँ भी उनमें देखने को मिलती हैं। तीसरी आत्माएँ वे हैं, जिनमें तामसिक प्रवृत्तियाँ प्रबल हैं, परंतु उनमें सात्त्विक प्रकाश की अनुभूति कभी-कभी हो जाती है। चौथी आत्माएँ वे हैं; जो वर्तमान समय में पूर्ण रूप से अंधकार से, तमस् से घिर गई हैं और जड़ता, पाप, निष्क्रियता ही उनके जीवन की परिभाषा बन गए हैं।

इनमें से प्रकृति प्रत्येक प्रवृत्ति वाले मनुष्य से उसकी प्रवृत्ति के अनुसार काम ले लेती है। तामसिक प्रभुत्व के साथ जन्मे रावण के कुकर्मों को वह माध्यम बना लेती है, ताकि भगवान राम का अवतरण संभव हो सके। यहाँ यह कहने का अर्थ मात्र इतना है कि ध्वंस की परिस्थितियाँ भी परमात्मा की इच्छा से बनती हैं, ताकि सृजन की पृष्ठभूमि तैयार हो सके।

यदि नींव के पत्थर पर हथौड़े न पड़ें, तो इमारत खड़ी कैसे हो सकेगी? यदि बीज गले नहीं, फटे नहीं, उसके अंदर का अंकुर फूटे नहीं, तो पौधा जन्म कैसे ले सकेगा? यदि माँ प्रसव की पीड़ा से न गुजरे तो नई आत्मा को जीवन कैसे मिल सकेगा? इसी तरह प्रकृति भी आसुरी प्रवृत्ति वाले मनुष्यों की सामर्थ्य का उपयोग जगत् का ध्वंस करने में ले लेती है, ताकि ध्वंस के उपरांत सृजन की मनोरम परिस्थितियाँ विनिर्मित हो सकें। भगवान श्रीकृष्ण के अनुसार सृष्टि में उपस्थित आसुरी तत्त्वों का यही उद्देश्य है। (क्रमशः)

फूलों का विचित्र संसार

वसंत ऋतु के साथ पूरी प्रकृति जैसे नाना रंग के फूलों के शृंगार के साथ सज जाती है। चारों ओर रंग-बिरंगे फूलों की सतरंगी छटा इन दिनों में देखते ही बनती है। इन फूलों के बीच कुछ ऐसे भी फूल हैं, जो अपनी सुंदरता के साथ विचित्रता लिए होते हैं, जो अपने अजूबेपन के कारण लोगों का ध्यान आकर्षित करते हैं तथा जिनके दर्शन हमें विस्मित करते हैं। प्रस्तुत है विश्व उद्यान में फैले ऐसे ही कुछ विचित्र एवं विशिष्ट फूलों का रोचक संसार।

ब्लीडिंग हार्ट दिल की तरह दिखने वाला सुंदर फूल है, जिसे देखकर लगता है कि मानो जैसे इसमें से खून की बूँदें टपक रही हों। इस फूल की पत्ती के अंत में एक बूँद जैसी छोटी-सी आकृति लटकी होती है, जिसकी तुलना रक्त की बूँद से की गई है, जिस कारण इस फूल का नाम ब्लीडिंग हार्ट रखा गया है। इसके पौधे दुनिया के कई हिस्सों में पाए जाते हैं, जिनका उपयोग फूलों के गहने बनाने में भी किया जाता है। हालाँकि ये जहरीले होते हैं और इनसे गंभीर त्वचा रोग होने का खतरा रहता है, इसलिए इनसे दूर रहना ही बेहतर रहता है।

पैरेट फ्लावर एक किनारे से देखने पर उड़ते हुए तोते की तरह लगता है, इसलिए इसका नाम पैरेट फ्लावर रखा गया है। इस अद्‌भुत फूल का रंग बैंगनी और लाल रंग लिए होता है। ब्रिटिश वनस्पति वैज्ञानिक सर जोसेफ डाल्टन हूकर ने पहली बार सन् 1901 में इस पौधे का वैज्ञानिक वर्णन किया था। इस फूल का दुर्लभ पौधा थाईलैंड, बर्मा और भारत के कुछ हिस्सों में पाया जाता है।

फ्लाइंग डक ऑर्किड बतख जैसा दिखने वाला फूल है। यह फूल देखने में बिलकुल बतख जैसा लगता है। यह ऑस्ट्रेलिया के उत्तरी और दक्षिणी जंगलों में पाया जाता है। यह फूल बहुत छोटा होता है और इसकी लंबाई केवल 1.5 से 2.5 सेंटीमीटर ही होती है। इसकी चोंच को छूते ही यह नीचे सिमट जाता है और अपने सर को खोखले पेट में छिपा लेता है।

मंकी ऑर्किड एक बेहद खूबसूरत फूल है, जो अंदर से देखने पर बंदर की तरह लगता है। यह मध्य एवं दक्षिणी यूरोप में व्यापक रूप से पाया जाता है। ऑर्किड की यह दुर्लभ प्रजाति इक्वाडोर और पेरू के दक्षिण-पूर्वी हिस्सों के वर्षा वनों में भी उगती है। इसके फूल की पंखड़ियाँ तथा इस पर बने उभार और धब्बे मिलकर एक बंदर जैसा चेहरा बनाते हैं, जो देखने पर आश्चर्यचकित करता है। नेकेड मैन ऑर्किड भी एक विचित्र-सा फूल है, जिसके ऊपरी भाग में एक नग्न आदमी जैसी आकृति बनती है। इसी तरह बैलेरिना ऑर्किड एक खूबसूरत फूल है, जो देखने में ऐसा लगता है कि जैसे कोई लड़की नृत्य कर रही हो।

हुकर्स लिप्स एक ऐसा फूल है, जिसे देखकर लगता है कि जैसे किसी ने ओंठों पर लाल रंग की लिपस्टिक लगा रखी हो। कई लोग इसे अतिरंजित विवरण मान सकते हैं, लेकिन यह एक बिलकुल वास्तविक फूल है। यह मध्य और दक्षिणी अफ्रीका के उष्णकटिबंधीय वर्षावनों में पाया जाता है। यह पौधा अपने आकार के कारण परागण करने वाले तितली, हमिंग्जबर्ड जैसे जीवों को आकर्षित करता है।

स्नैपड्रैगन और इसकी खोपड़ी एक रोचक फूल है, जो यूरोप, अमेरिका और उत्तरी अफ्रीका के चट्टानी इलाकों में पाया जाता है। इसके खूबसूरत फूलों की पंखड़ियाँ एक अजगर के चेहरे की छाप देती हैं, इनको जब निचोड़ा जाता है, तो मुँह की तरह खुलती और बंद हो जाती हैं, लेकिन जब ये पंखड़ियाँ सूख जाती हैं, तो गिरने के बाद बीज की फली शेष रह जाती हैं, जो किसी की खोपड़ी की तरह दिखती हैं। यहाँ की प्राचीन संस्कृतियों में स्नैपड्रैगन को अलौकिक शक्तियों का स्वामी माना था।

स्वैडल्ड बेबी फ्लावर एक अद्‌भुत फूल है, जो कपड़े में लिपटे सोते हुए बच्चे की तरह दिखता है। इसका पौधा कोलंबियन ऐंडीज में पाया जाता है। इसका फूल मलाईदार-सफेद मोम जैसा होता है। इसकी संरचना काफी जटिल होती है, जो खोलने पर कपड़ों के बीच रखे एक बच्चे की

तरह दिखता है। ऐसा लगता है कि जैसे एक शिशु कपड़ों के बीच सो रहा हो। यह सफेद रंग का होता है तथा इसमें अच्छी सुगंध निकलती है और ये वसंत तथा ग्रीष्म ऋतु में खिलते हैं।

गुलाब को विश्व के सबसे सुंदर फूलों में से एक माना जाता है। इसीलिए इसे फूलों का राजा कहा जाता है। यह विश्वभर में सबसे अधिक लोकप्रिय फूलों में से एक है और यह कई आकार एवं रंगों में मिलता है। नीले गुलाब को इसका एक दुर्लभ प्रकार माना जाता है। हालाँकि यह प्राकृतिक रूप में नहीं मिलता, लेकिन लोगों ने इसे रंगकर या कृत्रिम तरीके से गुणसूत्रों के अभिवर्द्धन के आधार पर तैयार किया है। इस रंग के गुलाब को दुर्लभ एवं स्वयं में अद्वितीय फूल माना जाता है, जो काफी महँगा बिकता है।

तक्का चेंटरिअर या काला चमगादड़ फूल, फूलों की एक विचित्र प्रजाति है। चमगादड़ की तरह दिखने वाले इस फूल का रंग काला होता है, जिसमें ऐंटीना की तरह एक हिस्सा लगा होता है, जिसे लेडीज स्लिपर के नाम से भी जाना जाता है। इसकी खोज चार्ल्स डार्विन ने दक्षिण अमेरिका के आस-पास अपने अन्वेषण के दौरान की थी।

रैफलेसिया अर्नोल्ड विश्व का सबसे बड़ा खिला हुआ फूल माना जाता है, जो मुख्यत: मलयेशिया और इंडोनेशिया में पाया जाता है। इसका व्यास 1 मीटर तथा भार 10 से 12 किलो तक हो सकता है। फूल की त्वचा छूने में मांस की तरह प्रतीत होती है और इसके फूल से सड़े मांस की बदबू आती है, जिससे कुछ विशेष कीट-पतंग इसकी ओर आकृष्ट होते हैं। यह एक आश्चर्यजनक परजीवी पौधा है, जिसमें केवल फूल ही एक ऐसा भाग है, जो जमीन के ऊपर रहता है। शेष सब भाग कवक जाल की भाँति पतले-पतले होते हैं और जमीन के अंदर ही धागों के रूप में फैले रहते हैं, जो दूसरे पौधों की जड़ों से भोजन चूसते हैं। यह फूल लगभग एक हफ्ते तक तरोताजा खिला रहता है।

एमोर्फोफैलस टाइटेनम दुनिया के सबसे बड़े एवं ऊँचे फूलों में से एक है, जो इंडोनेशिया में पाया जाता है। एक सप्ताह तक खिलने वाला यह फूल भी सड़े हुए मांस जैसी बदबू फैलाता है। खिलने के बाद इसकी ऊँचाई 3 मीटर तक हो सकती है और भार 5 किलोग्राम तक। यह फूल 9 साल में एक बार खिलता है और यह खिलने के केवल 48 घंटे तक ही जीवित रहता है। सन् 2018 में केरल के उत्तरी वायंड में परिया के समीप स्थित अलाट्टिल के गुरुकुल बोटेनिकल सैंक्चुअरी में यह फूल खिला था, जिसके दर्शन के लिए हजारों लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी थी। इस फूल को इंडोनेशिया के सुमात्रा क्षेत्र से यहाँ लाया गया था।

यह फूलों के विचित्र संसार की एक छोटी-सी झलक थी, जिसे देखकर प्रकृति की अद्भुत कलाकारिता का परिचय मिलता है, जिसके पीछे छिपे रहस्य को ठीक-ठीक जान पाना मनुष्य के लिए हमेशा संभव नहीं होता। ❑

पंडित श्रीधर द्विवेदी ने वेदांत पर टीका लिखी थी। उनके एक मित्र ने उनकी रचित पुस्तक अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान को भेंट में दी। उसे पढ़कर उन्होंने पंडित द्विवेदी को पत्र लिखा—आपकी रचना ने मेरे पर गंभीर असर किया है। सोचता हूँ कि गृहस्थी का त्याग कर संन्यासी बन जाऊँ। द्विवेदी ने उत्तर लिखा—यदि ऐसा होगा तो मैं समझूँगा कि मुझसे टीका करने में कोई त्रुटि हो गई। भारतीय संस्कृति संसार के त्याग की नहीं, वरन आसक्ति और वासनाओं के त्याग की बात करती है। सच्चा अध्यात्म जंगलों में नहीं, परमेश्वर की इस पावन कृति के मध्य में उपलब्ध होता है।

देवतास्वरूप भाई परमानंद

महर्षि दयानंद एवं आर्यसमाज से प्राप्त राष्ट्रीय भावना वाले देशभक्त लोगों की नामावली में स्वामी श्रद्धानंद के साथ यदि और किसी का नाम लिखा जाता है तो वे हैं दयानंद कॉलेज, लाहौर के भूतपूर्व प्रसिद्ध प्रोफेसर स्व० भाई परमानंद, एम०ए० जिन्होंने इस दिशा में जो अलौकिक कार्य किया है, वह किसी से छिपा नहीं है। उनका जन्म 4 नवंबर, 1878 को हुआ। आर्यसमाज की शिक्षण संस्था में अध्यापन कार्य करते हुए वे आर्यसमाज की ओर से उसके सिद्धांतों के प्रचारार्थ एक प्रचारक के रूप में अफ्रीका गए।

वहीं से उनके राष्ट्रीय जीवन का अध्याय प्रारंभ हुआ। उनके एक सहयोगी ने उनके राष्ट्रीय जीवन के संस्मरणों को उद्धृत करते हुए लिखा—जो कुछ पढ़ने का फल है, वह मेरी समझ में आ चुका है। अँगरेजों को यहाँ से निकल जाना चाहिए। उनकी योग्यता को बढ़ाने के लिए कमेटी (डी०ए० वी० कॉलेज प्रबंधकत्री सभा) ने उन्हें लंदन में इतिहास के अध्ययन के लिए भेजा। वहाँ उन्होंने परीक्षा दी, परंतु कामयाब नहीं हुए। डिग्री तो नहीं ला सके, परंतु सन् 1857 के विद्रोह पर जो भी पुस्तकें मिल सकीं, वह कॉलेज (डी०ए०वी० कॉलेज, लाहौर, जिसमें भाई जी इतिहास के प्रोफेसर थे) के लिए ले आए। भाई परमानंद ने इसके आधार पर एक पुस्तक लिखी, जो उनके खिलाफ मुकदमे में बरती गई।

सरकारी वकील ने मुकदमे के दौरान कहा कि यह क्या बताऊँ कि पुस्तक में कौन-सा परिच्छेद आक्षेप के योग्य है, सारी पुस्तक ही राजद्रोह है। भाई परमानंद विलायत से आते हुए पुस्तकें तो लाए ही थे, साइक्लोस्टाइल पर छपी एक पत्रिका भी लेते आए थे। वह बम बनाने का नुसखा था। भाई जी शहर (लाहौर) में एक मकान की पहली मंजिल में रहते थे। दूसरी मंजिल में सरदार किशन सिंह के संबंधियों की रिहायश थी, जो सरदार अजीत सिंह के बड़े भाई थे तथा शहीद भगत सिंह के पिता थे। सन् 1909 में पुलिस को किसी संबंध में किशन सिंह के मकान की तलाशी लेनी पड़ी।

भाई परमानंद के मकान की तलाशी की आज्ञा भी पुलिस ने प्राप्त कर ली। भाई परमानंद के पास वह नुसखा पड़ा मिला, जो उनकी वापसी के समय श्याम जी ने जबरदस्ती रख दिया। श्याम जी कृष्ण जी ने उन्हें अजीति सिंह के लिए पिस्तौल भी दी, जो उनके पास ही पड़ी रही। तलाशी में वह नुसखा पुलिस के हाथ आ गया। भाई परमानंद जी की नौकरी छीन ली गई। अच्छे आचरण के लिए 25-25 हजार की दो जमानतें उनके दो मित्रों ने दीं, जिसके बाद वे अमेरिका चले गए। वहाँ से सन् 1914 में भारत आकर गरीबों की सेवा के उद्देश्य से दवाघर खोला।

उन दिनों माईकल ओड्वायर पंजाब का गवर्नर था। जब उससे किसी ने भाई परमानंद का जिक्र किया, तो उसने कहा—''कहता है दवाइयाँ बनाता हूँ, परमात्मा जानता है बनाता क्या है?'' उसी शाम को भाई परमानंद को पकड़ लिया गया। भाई जी का मुकदमा एक ट्रिब्यूनल के सामने पेश हुआ, जिसके तीन सदस्य थे। दो जज अँगरेज थे और तीसरे पं० शिवनारायण भारतीय जज थे।

दोनों अँगरेजों ने मृत्युदंड की संस्तुति की; जबकि पं. शिवनारायण ने उम्रकैद की सिफारिश की। मामला वायसराय के पास गया, जिसने आजीवन कैद का आदेश दिया। उन्हें अंडमान द्वीप जिसे कालापानी कहा जाता है, वहाँ भेज दिया गया। वहाँ वीर सावरकर, भाई परमानंद के साथ थे। इन दोनों का आपस में घनिष्ठ संबंध हो गया था। भाई परमानंद कहते थे कि वीर सावरकर और वह दोनों विशेष रूप से देख-भाल का विषय थे।

भाई परमानंद पर जो गुजरी, उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। उनकी पत्नी भाग्यसुधी पर जो गुजरी, वह बहुत भिन्न न थी, परंतु उनने इन कष्टों को बड़ी हिम्मत से सहन किया। शहर की एक छोटी-सी गली में एक छोटा-सा कमरा किराये पर लिया और आर्यसमाज की कन्या पाठशाला में काम करना आरंभ किया। भाई परमानंद को सन् 1926 में रिहा कर दिया गया। भाई परमानंद को पुलिस ने लाहौर रेलवे स्टेशन पर या लाहौरी द्वार के निकट ताँगों-इक्कों के अड्डे पर छोड़ दिया। निकट ही आर्यसमाज मंदिर था।

वे वहाँ गए और एक व्यक्ति से पूछा कि क्या वह उन्हें भाई परमानंद के परिवार के निवासस्थान का पता दे सकता है? वहीं पास खड़े एक आदमी ने उन्हें पहचान लिया और वे उसकी सहायता से अपनी पत्नी और बच्चों के पास पहुँच गए। इसके पश्चात भाई जी कुछ दिनों के लिए कांग्रेस में भी शामिल हुए, परंतु जब वे कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन पर गए, तो उन्हें वहाँ बैठने नहीं दिया। भाई जी के स्वाभिमानी हृदय को इससे ठेस पहुँची। इस घटना के बाद वे कांग्रेस के क्रियाकलापों से सदा के लिए अलग हो गए।

जब स्वातंत्र्य संग्राम के अमर योद्धा लाला हरदयाल अमेरिका में थे, तब एक बार उनके मन में यह विचार आया कि इन स्वातंत्र्य-संग्राम के झंझटपूर्ण तथा अशांतिदायक कार्यों से पृथक हो, किसी नए अध्यात्म-संप्रदाय को जन्म दे वैराग्य-वृत्ति से ही शेष जीवन व्यतीत करना चाहिए और इसके लिए वह पूर्ण तैयारी भी कर चुके थे। तब इसी देशभक्त आर्यवीर ने राष्ट्रीयता से पूर्ण उत्तेजनात्मक विचारों का पुट दे, उनकी वृत्ति को पुनः स्वातंत्र्य संग्राम की ओर मोड़कर राष्ट्रीय क्षेत्र में एक महान तथा अद्‌भुत कार्य किया।

इतिहास के ये अमिट एवं अमर तथ्य प्रकट करते हैं कि महर्षि दयानंद तथा आर्यसमाज से स्वाधीनता का मंत्र सीखकर ही ये वीर सिर पर कफन बाँध तथा प्राण हथेली पर धरे हुए, परिवारों के प्रबल ममत्व को छोड़कर अंडमान जैसे सुदूर प्रदेशों में गए। वहाँ की नरकतुल्य गंदी तथा तंग कोठरियों में हथकड़ियों-बेड़ियों से बँधे हुए अपने जीवन के लंबे हिस्से तिल-तिलकर जलाते, बिताते हुए अद्‌भुत एवं उत्कट देशप्रेम का परिचय दिया। वे भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम के एक अमूल्य घटक थे व रहेंगे। ❑

तालाब के मेंढ़क और पास के गोदाम में रहने वाले चूहे के बीच घनिष्ठ मित्रता हो गई। दोनों के बीच घनिष्ठता ज्यादा बढ़ी तो दोनों ने एक रस्सी ली और उसका एक छोर चूहे ने अपनी पूँछ में और दूसरा छोर मेंढ़क ने अपने पैर में बाँध लिया।

इस प्रक्रिया का उद्‌देश्य यह था कि दोनों कभी एकदूसरे से ज्यादा दूर न जा पाएँ और घनिष्ठ मित्र सदा साथ रहें। रस्सी बाँधे ज्यादा समय नहीं गुजरा था कि मेंढ़क को एक कीड़ा दिखाई पड़ा। प्रवृत्तिवश वह उसके पीछे-पीछे पानी में कूद पड़ा और अपने साथ चूहे को भी ले गया। पानी में तैर न पाने के कारण चूहा डूबकर मर गया और उसका मृत शरीर पानी के ऊपर आ लगा।

आसमान में उड़ती चील की दृष्टि उस पर गई तो वह झपटकर चूहे को ले निकली, पर चूहे की लाश के साथ मेंढ़क भी खिंचता चला गया। चील ने दोनों का शिकार कर लिया। यह दृश्य देखते एक सज्जन अपने साथी से बोले—"मित्र! संबंधों का आधार आत्मीयता होनी चाहिए, आधिपत्य नहीं। जबरन दूसरों को अपने साथ घसीटने वाले स्वयं दुर्दशा के पात्र होते हैं और साथ आए को भी उसका पात्र बनाते हैं। जीवन का यही सत्य है।"

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी –1

परिव्राजक परंपरा का पुनर्जीवन (पूर्वार्द्ध)

परमपूज्य गुरुदेव के व्यक्तित्व की यह एक अलौकिक विशेषता रही है कि उन्होंने भारतीय संस्कृति के समस्त आयामों को एक प्रगतिशील चिंतन एवं प्रासंगिक दृष्टिकोण के साथ समाज के सामने प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत उद्‌बोधन परिव्राजक परंपरा के पुनर्जीवन के प्रयास पर केंद्रित है। यद्यपि अनेक लोग परिव्राजक परंपरा का उद्‌देश्य मात्र प्रव्रज्या से लगाकर बैठ जाते हैं; जबकि परमपूज्य गुरुदेव उसी परंपरा के अनेक पक्षों पर एक सामयिक व्याख्या करते हुए नजर आते हैं। वे कहते हैं कि परिव्राजक होने का उद्‌देश्य स्वास्थ्य का संरक्षण भी है और जनसंपर्क करते हुए जीवन के अनुभवों को बेहतर बनाना भी है। वे कहते हैं कि जो इस भावना के साथ परिव्राजक प्रशिक्षण को प्राप्त करते हैं, उनका विकास समग्र होता है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

स्वास्थ्य का सवंर्द्धन

देवियो, भाइयो! परिव्राजक अभियान के अंतर्गत आप लोग यहाँ आए हैं। इसके बारे में संसार में सब लोग जानते हैं। इसमें स्वार्थ और परमार्थ दोनों का समन्वय है। स्वार्थ का भी समन्वय है ? हाँ, बेटे! स्वार्थ का भी समन्वय है। यह मत समझना कि इसमें परमार्थ है। परमार्थ तो है ही। परमार्थ की दृष्टि तो आपकी रहनी ही चाहिए, लेकिन इसमें स्वार्थ का समन्वय न हो, ऐसी बात नहीं। इसमें क्या है ? इसमें सबसे बड़ा स्वार्थ है—स्वास्थ्य का संवर्द्धन। आपने मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री कैलाश जोशी का नाम सुना होगा, जो श्री सकलेचा से पहले थे। उनको स्वास्थ्य संबंधी बहुत सारी शिकायतें थीं। पहले पेट की शिकायत थी।

आरोग्य पत्रिका में उनका एक लेख छपा है। उसमें उन्होंने लिखा है कि मेरा पेट खराब हो गया और दुनिया के सारे इलाज करा लिए। फिर मैंने सोचा कि अब क्या करना चाहिए? फिर किसी ने मुझसे कहा कि पैदल लंबा सफर करना चाहिए। आरोग्य पत्रिका के संपादक ने कहा कि आपको इंदौर से गोरखपुर तक पैदल ही आना है, तभी हम आपकी बीमारी को अच्छा कर सकेंगे। वे रजामंद हो गए और इंदौर से लेकर गोरखपुर तक का पैदल सफर उन्होंने किया और गोरखपुर जा पहुँचे। गोरखपुर थोड़े दिन तक रहे। पहले की बात है, जब वे मुख्यमंत्री नहीं थे। थोड़े दिन तक इलाज कराते रहे, फिर वापस पैदल ही निकल पड़े। पैदल चलने के बाद में उनका स्वास्थ्य बिलकुल अच्छा हो गया।

मित्रो! स्वास्थ्य संवर्द्धन के लिए व्यायामों में जितने अच्छे व्यायाम हैं, उनमें टहलना सबसे बढ़िया व्यायाम है। इससे बढ़िया कोई व्यायाम नहीं हो सकता। गांधी जी ने जिस व्यायाम को करने के लिए सभी आदमियों को हिदायत दी है, वह है—टहलना। उन्होंने कहा है कि आप कोई काम करें या न करें, स्वास्थ्य की रक्षा के लिए आप टहलने वाले व्यायाम को जारी रखें। बेटे! हमारा तो अभी भी टहलने का व्यायाम जारी है। जिंदगी भर में हमने दो काम नहीं छोड़े हैं। एक तो भजन नहीं छोड़ा है और दूसरा टहलना नहीं छोड़ा है।

गुरुजी! अब तो आप ऊपर बंद रहते हैं, जेलखाने में बंद रहते हैं, फिर आप कैसे टहलते हैं ? आप घड़ी लेकर

के देख लीजिए, मैंने टहलना और स्वाध्याय हमेशा जारी रखा है। चाहे जो हो जाए, अभी भी हम नियमित रूप से टहलते हैं, यह हमारा नियम है। महाराज जी! आप तो ऊपर बैठे रहते हैं? हम बैठे ही नहीं रहते, टहलते भी रहते हैं। बैठे रहेंगे तो बीमार हो जाएँगे। स्वास्थ्य संवर्द्धन के लिए टहलना आवश्यक है।

बगदाद के हकीम की कहानी

मित्रो! टहलने के लिए मुझे बगदाद के एक हकीम की बात याद आ गई। बगदाद में एक ऐसा हकीम था, जिसके बारे में सारे-के-सारे मुसलिम देशों में यह ख्याति थी कि अपने जमाने का सबसे बड़ा हकीम था। जो भी मरीज उसके पास आते थे, हर मरीज को वह अच्छा कर देता था। उसकी ख्याति बहुत से मुल्कों में फैल गई। एक जमींदार आदमी बहुत संपन्न था। वह बहुत सारी बीमारियों से घिर गया। उसने बहुत इलाज कराया, परंतु अच्छा न हो सका।

लोगों ने कहा—"अब एक ही हकीम है, जो आपको अच्छा कर सकता है और कोई भी हकीम नहीं है। आप उसके पास जाइए; लेकिन उसका यह नियम था कि अगर आप पैदल आएँगे, तभी हम आपकी देख-भाल करेंगे। पैदल नहीं आएँगे, तो नहीं करेंगे। कोई ऐसा मरीज हो, जो चल-फिर नहीं सकता हो तो अलग बात है। उसको भी जहाँ तक हो सके, धीरे-धीरे चलना चाहिए। उस जागीरदार का किस्सा अखण्ड ज्योति के अगले अंक में छपने जा रहा है। अगले अंक में उसका नाम-पता भी लिख दिया है।

मित्रो! वह जमींदार पैदल चलकर हकीम जी के पास गया। दवाखाने का पता लगाने लगा, तो पता चला कि हकीम जी ऊँट चराने गए हैं। वे सवेरे ही जाते हैं और शाम को वापस आते हैं। अगर आपको मिलना है, तो वहीं जाकर मिल सकते हैं। वह जागीरदार गया और तलाश करता रहा कि हकीम जी कहाँ हैं? इस जंगल से उस जंगल में सारे दिन ढूँढ़ता फिरा। बाद में हकीम जी रास्ते में मिले। हकीम साहब! हम तो आप से इलाज कराने आए हैं। हाँ! आइए, हम आपका इलाज करेंगे। हमारा तो कोई और काम ही नहीं है। आप ऊँट क्यों चराते हैं? हम इसलिए चराते हैं कि हम औरों का इलाज करते हैं, तो पहले अपना तो इलाज कर लें। हमारी सेहत अच्छी रहे, इसके लिए हमको ऊँट चराने पड़ते हैं। ऊँट से यह फायदा है कि वह एक जगह बैठकर नहीं खाता। कभी इस पेड़ की पत्ती, तो कभी उस पेड़ की पत्ती सारे जंगल में खाता फिरता है। उसकी आदत ही ऐसी है। उसके खाने का सामान एक जगह रख देंगे, तो उसका पेट हजम ही नहीं करेगा।

मित्रो! ऊँट चराने के बाद में उन्होंने जमींदार को देखा कि उसे क्या-क्या बीमारियाँ हैं? ये बीमारी, वो बीमारी—कितने साल से हैं? पाँच साल से हैं। बवासीर इतने साल से, डायबिटीज इतने साल से, हार्ट की बीमारी इतने साल से है। अच्छा तो हमने देख लिया। अब सारी बीमारियों की एक ही दवा देते हैं।

उन्होंने अपनी जेब से बहुत सारी दवाइयाँ निकालीं और पुड़ियाँ बना-बनाकर दे दीं। ये खाई कैसे जाएँगी? अब यह भी समझ लीजिए। बताइए साहब! आपको पैदल चलना होगा और पैदल चलते-चलते जब आपके माथे पर पसीना निकलने लगे, तो उस पसीने की बूँद को हथेली पर रख लीजिए और उसमें दवा मिलाकर चाट जाइए। शहद में नहीं, पसीने की बूँद में। पसीना भी ऐसा नहीं कि धूप में जा बैठें। धूप का पसीना भी काम का नहीं है। चलने का पसीना और वह भी माथे पर निकले। इससे कम में इलाज नहीं हो सकता। उन्होंने तीस पुड़ियाँ दीं। उन्हें लेकर के वह आदमी चला गया।

मित्रो! दवा खाना है तो पसीना चाहिए? धीरे-धीरे चलेंगे तो पसीना नहीं निकलेगा। तेज गति से चलने पर पसीना निकलेगा। जमींदार ने रोजाना पसीने में दवा मिला-मिलाकर खाई। महीने भर के अंदर वह हट्टा-कट्टा हो गया, चंगा हो गया। फिर वह हकीम जी को धन्यवाद देने के लिए आया और कुछ इनाम देना चाहा। उसने कहा कि मैं दस साल से बीमार था। हजारों रुपये खरच हो गए। आपकी दवा ने तो मुझे ठीक कर दिया। आपकी दवा तो जादू की दवा है। इस दवा को हमें भी बता दें, तो हम भी लोगों को अच्छा कर दिया करेंगे।

हकीम ने कहा—"इसमें तो मिट्टी-धूल थी। इसे मैंने कूट-पीसकर रख दिया था।" तो फिर हम किससे अच्छे हो गए? आप अच्छे हो गए अपने पसीने से। पसीना बहाने के लिए आपको चलना पड़ा और चलने से आपकी सेहत अच्छी हो गई। पेट की नसें हिलने से लेकर के शरीर की सारी-की-सारी नसें, जो बैठे रहने से जकड़ जाती हैं

और उसके कारण गठिया से लेकर मोटापे तक हजारों बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं; क्योंकि आदमी का रक्त संचालन जैसा होना चाहिए, वह नहीं होता। चलने से शरीर की अनेक समस्याएँ ठीक हो जाती हैं।

परिव्राजक प्रशिक्षण में स्वास्थ्य का महत्त्व

मित्रो! परिव्राजक योजना में सेहत का फायदा खास है। अगर आपकी सेहत खराब है, आप बीमार रहते हैं। आपको बार-बार कमजोरी आती है। आपका पेट ठीक ढंग से काम नहीं करता, तो कृपा करके यह दवा लेना शुरू कर दीजिए। पुड़ियावाली वह दवा तो मैं नहीं देता। मैं क्यों चालाकी की बात बताऊँ? मैंने तो आपको पहले ही बता दिया। आप चलना शुरू कर दें। कोई बच्चे थोड़े ही हैं, जो मैं आपको बहकाता फिरूँ।

स्वास्थ्य संवर्द्धन परिव्राजक योजना का मुख्य अंग है, जिसमें हम पैदल चलना सिखाते हैं। गुरुजी! सवारी से? नहीं बेटे! सवारी से नहीं। परिव्राजक योजना सवारी पर नहीं चलेगी। सवारी से परिक्रमा हो ही नहीं सकती। आपको गोवर्धन की परिक्रमा करनी है, तो क्या सवारी से करेंगे? नहीं भाईसाहब! सवारी से नहीं होगी। सही माने में पूछें, तो परिक्रमा पैरों से ही नहीं, वरन दंडौती से होती है। दंडौती क्या होती है? दंडौती का अर्थ है—लंबे लेट जाइए और हाथ से निशान बना दीजिए। फिर दंडवत् लेट जाइए। यह दंडौती परिक्रमा कहलाती है। आप गोवर्धन जाकर कभी भी देख लीजिए। गुरुजी! इससे क्या होता है? बेटे! आदमी के स्वास्थ्य संवर्द्धन का स्वार्थ इससे जुड़ा हुआ है।

जनसंपर्क का महत्त्व

मित्रो! परिव्राजक योजना में यह महत्त्वपूर्ण स्वार्थ हमने आपको बताया। यह एक बात हुई। दूसरा स्वार्थ इसमें है—आपकी ज्ञानवृद्धि के लिए, अनुभव की वृद्धि के लिए। इसके लिए आपको जनसंपर्क करना पड़ेगा। व्यक्तित्व को विकसित करने के लिए अनुभव की आवश्यकता पड़ती है। अनुभवहीन व्यक्ति ठगे जाते हैं। अनुभवहीन आदमी मारे जाते हैं। अनुभवहीन पढ़े-लिखे हों तो क्या और बिना पढ़े हों तो क्या? वे पग-पग पर ठोकर खाते हैं। व्यावहारिक जीवन में उनकी सफलताएँ संदिग्ध रहती हैं।

स्त्रियों के ऊपर एक ही समस्या है। वे बी.ए. भी कर लेती हैं, एम.ए. भी कर लेती हैं, बस, एक कठिनाई है कि जनसंपर्क का फायदा उनको नहीं मिलता। बस, वही मम्मी से मिलती रहेंगी; बहन, भाभी से मिलती रहेंगी और ससुराल में सास, ननद, देवरानी आदि से मिलती रहती हैं। बस, उनकी अक्ल की दुनिया थोड़े से लोगों तक सीमित रहती है। इसलिए स्त्रियों को हर आदमी बहका लेता है, ठग लेता है। पंडा, ज्योतिषी, बाबाजी सब बहका लेते हैं। पति की अगर मृत्यु हो जाती है, तो देवर बहका लेता है। पग-पग पर बहकावा जितना स्त्रियों के भाग्य में लिखा है, जितनी ठोकरें स्त्रियाँ खाती हैं, उतनी कोई नहीं खाता। ज्ञान के अभाव से, अनुभव के अभाव से जितनी परेशान स्त्रियाँ होती हैं, उतना और कोई वर्ग नहीं होता। पढ़ी-लिखीं तो हैं, पर इनको अनुभव नहीं है।

मित्रो! अनुभव कहाँ से आता है? अनुभव जनसंपर्क से आता है और भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के तालमेल से आता है। आपने भिन्न प्रकार की परिस्थितियाँ देखी नहीं हैं। आपने कभी मुसीबत देखी ही नहीं है। आपने कभी भीड़, कभी रेलगाड़ी देखी नहीं है। परदेस देखा ही नहीं है, तो आपका अनुभव इतना सीमित रहेगा कि आपका पढ़ा-लिखा होना और बिना पढ़ा होना एक बराबर है। बहुत से आदमी ऐसे होते हैं, जो सारी जिंदगी नौकरी करते रहे।

जब रिटायर्ड होकर के आए, तो क्या मिला? फंड मिला। आपको 60 हजार रुपये का फंड मिला है, तो क्या करेंगे? चिटफंड में लगा देंगे। यह कैसा होता है? रुपया लगा दीजिए और खूब पैसा आता है। खूब माल कमाते हैं। फिर क्या करेंगे? हम बिज़नेस करेंगे। दो-तीन वर्ष के भीतर सारे-का-सारा पैसा समाप्त हो जाता है और फिर भूखों मरते हैं। क्यों साहब! क्या किया था? बिज़नेस किया था। जब ज्ञान नहीं था, अनुभव नहीं था, तो काहे को किया।

नहीं साहब! सारी दुनिया कमाती है। सारी दुनिया कमाती है, पर आप नहीं कमा सकते; क्योंकि आपके पास ज्ञान नहीं है। जिनके पास ज्ञान है, वे थोड़ा-सा पैसा, थोड़ी-सी पूँजी लेकर के और थोड़े से आदमियों की सहायता लेकर के, थोड़ा उधार का मामला लेकर के सारी गृहस्थी का पहिया घुमाते रहते हैं और किसी तरीके से कार्य करते रहते हैं।

जनसंपर्क से मिलता है अनुभव

मित्रो! हर कार्य के लिए अनुभव चाहिए। अनुभव किसे कहते हैं? अनुभव बेटे, जनसंपर्क को कहते हैं। जिस आदमी के पास जनसंपर्क नहीं है, जो आदमी लोगों से

मिलता-जुलता नहीं है, वह अपने आप में ज्ञानरहित है। पुस्तकों के ज्ञान से नहीं, जनसंपर्क के ज्ञान से अनुभव बढ़ता है। सरकार ने भी यह मान लिया है कि किताबी ज्ञान काफी नहीं है। इसलिए बच्चों के लिए खास नियम बना दिए हैं कि बाहर जाना पड़ेगा। क्यों साहब! सरकार का क्या फायदा है? बच्चे मारे-मारे घूमते हैं। हैरान होते हैं।

आपको मालूम नहीं है कि वे कूपमंडूक के तरीके से, एक जेलखाने के तरीके से घर में रहते हैं। स्कूल चले जाते हैं। इसका ज्ञान बढ़ना चाहिए। दुनिया कितनी बड़ी है, यह इन्हें मालूम होना चाहिए। दुनिया की परिस्थितियाँ क्या हैं? इसका ज्ञान उन्हें होना चाहिए, तभी इनकी अक्ल खुलेगी। पढ़ाई आँखें खोल सकती है, पर अक्ल नहीं खोल सकती। अक्ल खोलने के लिए आदमी को ज्ञान की वृद्धि आवश्यक है। इसलिए क्या करना पड़ता है? आपको विभिन्न लोगों के पास जाने से, विभिन्न तरह की बात करने से, भिन्न-भिन्न तरह की मन:स्थिति समझने से, तरह-तरह के लोगों के अच्छे-बुरे स्वभाव समझने से, ताकि दुनिया का ज्ञान और अनुभव इकट्ठा हो जाए। यह हमारे लिए बहुत कीमती चीज है।

मित्रो! पढ़ाई एक ओर और अनुभव एक ओर। आपका बी०एस-सी० पढ़ना एक ओर, एम०एस-सी० पढ़ना एक ओर और आपको व्यावहारिकता का ज्ञान होना एक ओर। व्यावहारिकता का ज्ञान रखने वाले दुनिया में सफल होते रहते हैं। स्कूली पढ़ाई में फर्स्ट डिवीजन, सेकेण्ड डिवीजन पास होने वाले एल०डी-सी० की नौकरी के लिए झक मारते फिरते हैं; क्योंकि उनको व्यावहारिक ज्ञान नहीं है। ज्ञान का बेटे, बहुत मूल्य है। अनुभव का बहुत मूल्य है।

सबसे बड़ी कमजोरी—आत्महीनता

ज्ञान और अनुभव एकत्र करने के लिए इसके अलावा कोई भी तरीका नहीं है कि आप जनसंपर्क में आएँ। जनसंपर्क का शिक्षण हम परिव्राजक योजना में सिखाते हैं और इसमें क्या है। बेटे! सबसे बड़ी कमी और कमजोरी का नाम है—आत्महीनता। आत्महीनता उसे कहते हैं—जिसमें आदमी पग-पग पर झिझकता है। बोलने में शरमाता है। टिकट लेने में आफत आती है। किसी से बात करने में दिक्कत मालूम होती है। चार दुकानों पर जाकर मोलभाव करने में उसका प्राण निकलता है। दूसरे आदमी को देखकर डरता है और काँपता रहता है।

हमारा व्यक्तित्व, जो आदमी की मूलभूत संपदा है, वह विकसित ही नहीं हो पाता। दूसरों से बातचीत करने का मौका ही नहीं मिला। जब देखो तब झिझक और शरम के मारे गिरे चले जाते हैं। बहुत से बच्चे ऐसे ही होते हैं। औरतें भी ऐसी शरमीली और कुछ व्यक्ति भी ऐसे ही शरमीले स्वभाव के होते हैं। शरम ही नहीं, इनकी हिम्मत भी नहीं पड़ती है। ऐसे

राबिया प्रसिद्ध सूफी संत थीं। एक बार वे बसरा की गलियों में एक हाथ में आग और दूसरे में पानी का बरतन लिए दौड़ी चली जा रही थीं। उनकी बदहवास हालत देखकर लोगों ने उनसे इसका कारण पूछा।

वे बोलीं—"मैं जन्नत में आग लगाने और दोजख की आग बुझाने जा रही हूँ। मुझे यह देखकर बड़ी तकलीफ होती है कि लोग अल्लाह का नाम जन्नत पाने के लिए और दोजख से बचने के लिए लेते हैं। अल्लाह की भक्ति किसी लालच या डर के कारण नहीं, बल्कि निस्स्वार्थ होनी चाहिए।" आज के आडंबरपूर्ण पूजा-कृत्य करने वालों को राबिया की इस सीख की आवश्यकता है।

व्यक्ति पस्तहिम्मत हैं, जो अपनी बात तक को नहीं कह पाते। अपने विचारों को व्यक्त भी नहीं कर पाते।

मित्रो! आपकी यह मानसिक बीमारी आपके व्यक्तित्व की वृद्धि में सबसे बड़ी रुकावट डालती है। सबसे बड़ा रोड़ा पैदा करती है, जिस कारण से आपका व्यक्तित्व विकसित ही नहीं हो पाता। जब तक आप

विचारों का आदान-प्रदान करने में समर्थ नहीं हैं, तब तक आप दूसरों की बात समझ नहीं सकते और अपनी कह नहीं सकते।

ऐसी स्थिति में जब आप घुटते रहेंगे, तो दूसरों पर प्रभाव कैसे डालेंगे? दूसरों की बात समझ ही नहीं सकते; क्योंकि आदान-प्रदान का माद्दा ही नहीं है। इस कारण आदमी की सफलता के मार्ग बंद पड़े हैं। जो आदमी विचारों का आदान-प्रदान नहीं कर सकता, तो दूसरों के साथ में खुले जी से अपनी बात कह भी नहीं सकता और दूसरों को भी ऐसा मौका नहीं दे सकता कि दूसरे भी अपने मन की बात उससे कह सकें। तब तक घुटन पैदा होती रहती है और समस्याएँ उलझती रहती हैं। गुत्थियाँ पैदा होती हैं और लड़ाई-झगड़े शुरू हो जाते हैं। इतनी गलतफहमियाँ पैदा होती हैं कि आदमी और आदमी के बीच में दीवार खड़ी होती रहती है। आदमी-से-आदमी का जो सहयोग करने का रास्ता है, वह बंद हो जाता है।

आत्महीनता अधिकांश लोगों में पाई जाती है। इसको दूर करने का तरीका जनसंपर्क के अलावा और कोई हो नहीं सकता। आप जहाँ कहीं नई परिस्थितियों में जाएँगे, आपका परिचित तो कोई नहीं है वहाँ, फिर नए आदमी से ही आपको बात करनी पड़ेगी। नए आदमी से ही पूछताछ करनी पड़ेगी। धर्मशाला के लिए भी पूछने पर सौ बातें आपको वहीं मालूम करनी पड़ेंगी। खाने-पीने की दुकानों पर भी मोलभाव पूछना पड़ेगा। बाहर जाने पर ही आपको अनुभव होता है। यह आपके व्यक्तिगत लाभ की बात मैं कह रहा हूँ।

पाप का निराकरण और पुण्य का संपादन

मित्रो! आध्यात्मिक दृष्टि से आपके लिए दो काम और भी आवश्यक हैं। एक बड़ा भारी काम है—पाप का निराकरण और पुण्य का संपादन। पाप का निराकरण क्या है? पाप के निराकरण के लिए बेटे, दुनिया में एक ही काम है—प्रायश्चित। आपने समाज को जो नुकसान पहुँचाया है, उस गड्ढे को भरिए। आपने जितनी खाई खोदी है, उस खाई में मिट्टी डालकर उसका लेबल बराबर कीजिए। आपने दुनिया में पाप पाँच किलो किया है, तो पाँच किलो पुण्य कीजिए। पुण्य-पाप दोनों को मिला करके आप बैलेंस बराबर कर सकते हैं।

पाप क्या होता है? पाप, बेटे! इसे कहते हैं कि समाज में जो अव्यवस्थाएँ फैलाई हैं, जो आपने अवांछनीयताएँ फैलाई हैं। जो आपने अनैतिक कृत्य किए हैं, उनकी वजह से सामाजिक व्यवस्था को आघात पहुँचा है। उस आघात को पूरा करने के लिए ऐसे काम कीजिए, जिससे बैलेंस बराबर हो जाए। इसके लिए वह काम करना पड़ेगा, जिससे आप अपना समय देकर के, शक्ति खरच करके इसका प्रायश्चित करें।

सबसे अच्छा प्रायश्चित कौन-सा है? सबसे अच्छे प्रायश्चित की परंपरा तीर्थयात्रा रही है। तीर्थयात्रा के माहात्म्य जितने पुस्तकों में लिखे हैं, उनमें से हमारे धर्मग्रंथों में पापों के प्रायश्चित में तीर्थयात्रा को मुख्य स्थान दिया हुआ है। तीर्थयात्रा पाप को दूर करने का मुख्य माध्यम माना गया है। क्यों माना गया है? इसलिए माना गया कि आदमी उतने समय में अपना समय खरच करता है। नुकसान उठाता है। किराये-भाड़े में पैसा खरच करता है। क्यों? इसलिए कि उसने जो समाज को नुकसान पहुँचाया था, वह पूरा करने के लिए समय, श्रम और धन खरच करता है। यह क्या है? यह प्रायश्चित है।

मित्रो! पुण्य का संपादन यह है कि दुनिया में आपने जितनी भी गड़बड़ फैलाई है, समाज के उस गड्ढे को भरने के लिए एक ही काम हो सकता है कि लोगों को विचारों का दान दें। ज्ञान का दान दें। इससे बड़ा और कोई दान नहीं हो सकता। नहीं साहब! पैसे देने से भी काम चल सकता है। मालूम नहीं बेटे! पैसा देने से भी काम तो चलता होगा। मैं कह नहीं सकता कि पैसा देने से काम नहीं चलता, लेकिन मैं यह कहता हूँ कि पैसा देने से मनुष्य की शारीरिक आवश्यकताएँ पूरी होती हैं और शारीरिक आवश्यकताएँ ऐसी हैं, जो बहुत देर तक ठहर नहीं सकतीं। आप हमको खाना खिला दीजिए। अब तो भूख नहीं रही। बहुत भोजन खिला दिया, आपको बहुत धन्यवाद। लेकिन चार घंटे बाद फिर भूख लग जाएगी। अब और लाइए।

वाह साहब! क्या हमने जन्मभर का ठेका ले रखा है। कल दोपहर तो आपको खिलाया था, अब फिर माँगने आ गए। रोजाना भूख लगती है, रोजाना पुण्य कर, रोजाना दान दे। रोजाना हमारे खाने का इंतजाम कर।

नहीं साहब! हम नहीं कर सकते। फिर दान क्यों दे रहा था? ठीक है, कोई आदमी मुसीबत में फँसा हुआ है, तो उस मुसीबत में फँसे आदमी को राहत पहुँचाने के लिए सामयिक सहायता कर सकते हैं; लेकिन निरंतर की सहायता में आपके अनुदान से दूसरे का काम नहीं चल सकता। हम कपड़े देंगे। कपड़े देने से बेटे, हमेशा का काम नहीं चल सकता। अमुक सहायता देंगे, अमुक दान देंगे, इससे भी काम नहीं चल सकता।

मित्रो! काम चलने का एक ही तरीका है कि आप आदमी को ऐसी सलाह दें, जिससे वह अपने पाँव पर खड़े होने में समर्थ हो सके। एक बार मुसलमान धर्म के संस्थापक मुहम्मद साहब बैठे हुए थे। एक फकीर आया और बोला—"हमारे खाने-पीने का इंतजाम करा दीजिए। हम रोज भूखे रहते हैं। हमारे लिए खाने की रोज कमी हो जाती है।" उन्होंने कहा—"आप बताइए कि अभी भूखे हो तो खाने का इंतजाम करा दूँ और जन्मभर के लिए हो, तो जन्मभर के लिए करा दूँ।" आज तो भूखा हूँ, अभी खाना खिलवा दीजिए।

उन्होंने कहा—"अभी खिलवाता हूँ। उसके खाने का इंतजाम करा दिया।" वह बोला—"अब हमेशा के लिए ऐसा इंतजाम करा दीजिए, जिससे दोनों वक्त हमको भोजन मिल जाए और हमको बार-बार परेशान न होना पड़े।" अच्छा तो लीजिए मैं निश्चित रूप से सारी जिंदगी भर के भोजन का इंतजाम कर देता हूँ। कल से आपको मारा-मारा नहीं फिरना पड़ेगा और भूख की तकलीफ आपको बरदाश्त नहीं करनी पड़ेगी। हाँ साहब! बड़ी कृपा होगी, तो लीजिए अभी करता हूँ।

मित्रो! उस फकीर के पास एक पीतल का लोटा था। मुहम्मद साहब ने वह लोटा उठा लिया और खड़े होकर के उसे नीलाम करने लगे। यह पीतल का लोटा बिकाऊ है। पीतल का वह लोटा तीन दीनार में बिक गया। उन तीन रुपयों में से उन्होंने एक रुपया की तो कुल्हाड़ी खरीदी और उस फकीर को दी। यह किसलिए?

उन्होंने कहा—"यहाँ पास में जंगल है। वहाँ जाइए और जंगल में से लकड़ी काटकर लाइए और बाजार में बेंच दिया कीजिए और यह एक रुपया रखिए। जंगल में जाएँगे, लकड़ी काटेंगे, बाजार में जाकर बेचेंगे। इस बीच भूख लगेगी। जब तक लकड़ी नहीं बिके, इस एक रुपये से खाना खाइए। एक रुपये की रस्सी वगैरह, पैरों में चप्पल नहीं थीं, जूते नहीं थे। जंगल में जाएँगे तो काँटे लगेंगे, सो जूते पहन लीजिए। एक रुपये के जूते, रस्सी, एक रुपये की कुल्हाड़ी और एक रुपये का आटा-दाल बाँध दिया। अब जाइए, आपके जन्मभर की गारंटी हो गई।

दूसरे दिन से वह फकीर जंगल में जाने लगा, लकड़ी काटने और बाजार में बेचने लगा। एक महीने बाद उसकी मुहम्मद साहब से फिर मुलाकात हुई। कहिए, आपकी समस्या का समाधान हुआ कि नहीं? वह बोला—"अरे साहब! समस्या का समाधान भी हुआ और अभी मेरे पास सात दीनार नगद जेब में रखे हुए हैं। अब दोनों समय रोटी खाते हैं और किसी के सामने हाथ भी नहीं फैलाना पड़ता।"

[क्रमशः अगले अंक में समापन]

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006
Yes Bank	Dampier Nagar, Mathura	YESB0000072	007263400000143

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

विश्वविद्यालय परिसर से—190

पर्यावरण एवं विश्वशांति का सूत्रधार बना विश्वविद्यालय

इस संसार में प्रत्येक प्राणी, परमात्मा के द्वारा एक अद्भुत मौलिकता के साथ तैयार किया गया है। हर प्राणी के अस्तित्व का एक मौलिक व अद्वितीय कारण है, जिसकी अभिव्यक्ति ही उसके जीवन का परम उद्देश्य कही जा सकती है। अपने भीतर उपस्थित अद्वितीय संभावनाओं का जागरण मनुष्य के जीवन में एक ऐसी तृप्ति और संतुष्टि प्रदान करता है, जिसकी तुलना किसी अन्य उपलब्धि से नहीं की जा सकती।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय प्रत्येक विद्यार्थी में अंतर्निहित इन्हीं संभावनाओं के जागरण के लिए प्रतिबद्ध रहता है। इसी कारण से देव संस्कृति विश्वविद्यालय में आयोजित होने वाली कार्यशालाएँ सदैव एक नूतन व अभिनव उद्देश्य को ध्यान में रखकर आयोजित की जाती रही हैं।

इसी क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय में एक दो दिवसीय कार्यशाला का आयोजन महिला एवं बाल विकास मंत्रालय के साथ मिलकर किया गया। इस कार्यशाला में उत्तराखंड की महिला एवं बाल विकास मंत्री श्रीमती रेखा आर्य, राष्ट्रीय बाल संरक्षण आयोग के अध्यक्ष डॉ० प्रियंक कानूनगो एवं स्वनाथ फाउंडेशन की अध्यक्षा श्रीमती श्रेया भारती उपस्थित रहे।

कार्यक्रम की मुख्य अतिथि श्रीमती आर्य ने कहा कि भारतीय संस्कृति में अनाथ बच्चों के पालन की परंपरा बहुत पुरानी है और जब इस तरह के प्रयास, जिनका उद्देश्य अनाथ बच्चों को नई दिशा प्रदान करना है गायत्री परिवार जैसे प्रतिष्ठित प्रतिष्ठान द्वारा किए जाते हैं तो उसका प्रभाव संपूर्ण विश्व पर पड़ता है। इस अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने कहा कि भारत देश का नाम ही भरत के नाम पर पड़ा, जिनका लालन-पालन महर्षि कण्व ने कुछ इसी तरह की परंपरा के आधार पर किया था। वे बोले कि भारत में 30 लाख बच्चे अनाथ हैं और मात्र 4 लाख बच्चों की देख-भाल के लिए व्यवस्था उपलब्ध है। शेष 26 लाख बच्चों की देख-भाल के लिए ऐसे प्रयास अपेक्षित हैं।

इस अवसर पर राष्ट्रीय बाल विकास संरक्षण आयोग के अध्यक्ष डॉ० कानूनगो ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय की व्यवस्था से प्रभावित होते हुए कहा कि भारत सरकार देव संस्कृति विश्वविद्यालय के साथ मिलकर अनाथ बच्चों के पालन-पोषण एवं समुचित सांस्कृतिक विकास हेतु कार्य करना चाहेगी। उन्होंने इस हेतु एक प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम प्रारंभ करने की भी इच्छा व्यक्त की, जिसे देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा सहर्ष स्वीकार किया गया। इस अवसर पर श्री प्रशांत हरतालकर, देव संस्कृति विश्वविद्यालय के कुलसचिव श्री बलदाऊ देवांगन एवं सभी संकायाध्यक्ष उपस्थित रहे।

कुछ ऐसे ही महत्त्वपूर्ण सामयिक विषय को ध्यान में रखकर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग द्वारा ग्रामीण भारत और भारतीय विचारक विषय पर वेबिनार का आयोजन किया गया। इस वेबिनार का प्रारंभ पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग के विभागाध्यक्ष प्रो० सुखनंदन सिंह द्वारा किया गया और उन्होंने ग्रामीण भारत के प्रमुख विचारकों के चिंतन को समझाने के बाद परमपूज्य गुरुदेव के ग्रामीण विकास से संबंधित प्रमुख सूत्रों की व्याख्या की। इस अवसर पर श्री के०पी० दुबे जी ने भी अपने विचार व्यक्त किए।

इस कार्यशाला में जिन बिंदुओं पर विमर्श किया गया, उन बिंदुओं के समग्र अनुपालन से न केवल ग्रामीण विकास सुनिश्चित होगा, बल्कि राष्ट्रहित की भी पूर्ति हो सकेगी। इस तरह की कार्यशालाओं का उद्देश्य विकास के मार्ग प्रशस्त करने के अतिरिक्त भारतीय ऋषि परंपरा का पुनरोद्धार करना भी है। उल्लेखनीय है कि परमपूज्य गुरुदेव द्वारा प्रदत्त ग्राम्य विकास के सप्तसूत्र आज संपूर्ण भारत को एक नई व महत्त्वपूर्ण दिशा देते नजर आते हैं।

इस अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के पर्यटन विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ० अरुणेश पाराशर, डॉ० उमाकांत इंदौलिया एवं श्रीमती नेहा भावसार भी उपस्थित रहे।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित की जा रही इन महत्त्वपूर्ण कार्यशालाओं के क्रम में एक कार्यशाला देव संस्कृति विश्वविद्यालय एवं यूसर्क, उत्तराखंड के संयुक्त तत्त्वावधान में भी आयोजित की गई। इस कार्यशाला का विषय निर्मल गंगा जन अभियान था और इसे देव संस्कृति विश्वविद्यालय के स्कूल ऑफ टी.सी.एम. द्वारा संयोजित किया गया था।

इस अवसर पर कार्यशाला के मुख्य अतिथि श्री आनंदवर्द्धन, मुख्य सचिव उत्तराखंड ने गंगा के स्वरूप, उसकी धारा, उसके भूगोल व उसके प्रति धार्मिक भावना को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समझाया। इसके उपरांत देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने निर्मल गंगा जन अभियान में सन्निहित आध्यात्मिक भाव से सबको अवगत कराया एवं गंगा और गायत्री के मध्य संबंध पर प्रकाश डाला।

इस कार्यशाला में भाग लेने वाले सदस्यों के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करते हुए स्कूल के डीन प्रो० अभय सक्सेना ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय के कुलपति, कुलसचिव को भी धन्यवाद दिया। इस अवसर पर प्रो० शिवनारायण प्रसाद, श्री राधेश्याम सोनी ने भी अपने विचार व्यक्त किए। कार्यक्रम का समापन श्री स्वप्निल एवं श्रीमती गीतांजलि द्वारा किया गया एवं इसका प्रबंधन श्री प्रखर पाल द्वारा सुनिश्चित किया गया।

पर्यावरण के प्रति अपनी इसी जागरूकता को वृहद् रूप देते हुए देव संस्कृति विश्वविद्यालय में एक राष्ट्रीय स्तर की संगोष्ठी का भी आयोजन हुआ, जिसमें प्रख्यात विद्वान डॉ० कृष्णगोपाल जी मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित रहे। कुंभ 2021 के अवसर पर एक पर्यावरण समिति का गठन किया गया है और उस समिति की घोषणा इस संगोष्ठी के माध्यम से की गई। इस समिति की अध्यक्षता देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति को प्रदान की गई है।

इस अवसर पर उत्तराखंड के भूतपूर्व वनमहानिरीक्षक डॉ० रघुवीर सिंह रावत, महंत स्वामी रूपेंद्र प्रकाश एवं हरिद्वार के प्रथम महापौर श्री मनोज गर्ग जी भी उपस्थित रहे। इस समिति का उद्देश्य स्वच्छ पर्यावरणयुक्त एवं पॉलीथिन से मुक्त कुंभ को करना है। इस कार्यक्रम की प्रस्तावना को श्री गोपाल आर्य द्वारा प्रस्तुत किया गया एवं इसके उद्देश्य व सोपानों को स्पष्ट किया गया।

डॉ० रावत ने कहा कि इस उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए इकोब्रिक्स के द्वारा पॉलीथिन को मुक्त किया जाएगा तथा इसमें सभी सरकारी एवं गैर-सरकारी संगठनों का सहयोग लिया जाएगा। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि डॉ० कृष्णगोपाल जी ने शांतिकुंज के द्वारा चलाए जा रहे समस्त सामाजिक व आध्यात्मिक प्रकल्पों की भरपूर प्रशंसा की और यह भी कहा कि इस तरह के प्रयास मात्र गायत्री परिवार के कुशल संयोजन में ही सफल हो सकते हैं।

इस अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने कुंभ महापर्व के भौगोलिक तथा आध्यात्मिक महत्त्व को स्पष्ट करते हुए सभी प्रतिभागियों को बताया कि यह वर्ष शांतिकुंज का स्वर्ण जयंती वर्ष भी है और इसलिए एक विश्वव्यापी योजना शांतिकुंज के द्वारा प्रारंभ की गई है, जिसका नाम 'आपके द्वार-पहुँचा हरिद्वार' है। सभी संगठनों द्वारा इस योजना में पूर्ण परिश्रम के साथ जुटने का संकल्प लिया गया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि विगत दिनों प्राप्त हुई, जब संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा आयोजित एक विश्व प्रार्थना सभा में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी को आमंत्रित किया गया। इस आयोजन का मूल उद्देश्य यह था कि विश्व के सभी धर्म परस्पर मिलकर शांति व सद्भावपूर्ण संबंध स्थापित कर सकें।

अपने संदेश में प्रतिकुलपति जी ने परमपूज्य गुरुदेव एवं परम वंदनीया माताजी के विचारों को रखा और सभी प्रतिभागियों को गायत्री मंत्र के अर्थ से अवगत कराया। उन्होंने कहा—"आज विश्व में ऐसे चुनौतीपूर्ण समय में सभी को एकजुट होकर प्रार्थना द्वारा सकारात्मक वातावरण निर्मित करने की आवश्यकता है।"

इस प्रार्थना सभा में संयुक्त राष्ट्र संघ के रिलिजन फॉर पीस प्रकल्प की महासचिव प्रो० अजाकअराम; बहाई धर्म के अध्यक्ष बीटरेस; पारसी धर्म के श्री होमी; यहूदी धर्म से रब्बाई जोसेफ वोटसनिक; बौद्ध धर्म से केयुची सोनिगो; ईसाई धर्म से कार्डिनल जॉन, कार्डिनल डेन, कार्डिनल फाउलर; मुसलिम धर्म से इमाम मजीद, इमाम अली अब्बास; सिख धर्म से भाई मोहिंदर सिंह ने भाग लिया। श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी ने इसे देव संस्कृति विश्वविद्यालय के लिए एक उल्लेखनीय उपलब्धि घोषित किया। ❑

अपनों से अपनी बात

इस वर्ष करें एक ऐतिहासिक अनुष्ठान

यह मनुष्य का जीवन, जिसको प्राप्त करने का अधिकार या सौभाग्य हमें मिला है—इसको प्राप्त करने में जिन कष्ट-कठिनाइयों को हमें उठाना पड़ा है, उनसे लगभग हर व्यक्ति परिचित है। शास्त्र पढ़ने वाले जानते हैं कि शास्त्र कहते हैं कि चौरासी लाख योनियों में भटकने के बाद तब कहीं मनुष्य का यह जीवन नसीब हो पाता है और सत्य भी यह ही है कि शास्त्रों का यह वचन काल्पनिक कथा नहीं है।

न जाने किन-किन योनियों से गुजरने के बाद यह मनुष्य जीवनरूपी सौभाग्य मिल पाता है और जिस तरह से इस बहुमूल्य अवसर को इनसान गँवा देता है, वो देखकर के दुःख भी होता है और आश्चर्य भी। इस अवसर को गँवाते समय इनसान यह भूल ही जाता है कि अबके चूके तो यह चाक फिर से घूमेगा न जाने कब फिर से वो चेतना की घड़ी आएगी? न जाने फिर कब वो चैतन्य होने का अवसर मिलेगा?

व्यक्ति यह भूल ही जाता है कि हम पहली बार मनुष्य थोड़े ही बने होंगे। अनेकों बार बने होंगे। अनेकों बार ऐसी घड़ी आई होगी, जब हम मनुष्य बनकर परमात्मा को पाने के अवसर को गँवा बैठे होंगे। उस अवसर को गँवाने के बाद पछताए होंगे, प्रण-संकल्प किया होगा कि दोबारा यह अवसर मिलेगा तो गँवाएँगे नहीं और अब जब यह अवसर मिल गया है तो व्यक्ति सोचता भी नहीं और इस मनुष्य जीवन के रूप में मिले हीरे को यों ही कंकड़ की तरह से उठाकर फेंक देता है। समय रहते यदि होश आ जाए कि यह कंकड़ नहीं हीरा है, समय रहते यदि जीवन के प्रति सम्यक समझ पैदा हो जाए तो जीवन की राहें सौभाग्यसंपूर्ण हो जाती हैं। समय रहते जागने का नाम ही अध्यात्म है और जागने की इस प्रक्रिया का नाम ही गायत्री अनुष्ठान है।

ये अनुष्ठान आते ही इसलिए हैं कि इन नौ दिनों में व्यक्ति जाग्रति को, जागरण को प्राप्त करे। यह नवरात्र का समय साधारण समय नहीं है; क्योंकि इस समय में हम एक असाधारण शक्ति की उपासना करते हैं। यह संसार हर क्षण अपने रूप, आकार, संदर्भ में बदल जाता है, पर इस क्षण-प्रतिक्षण बदलने वाले संसार में कुछ ऐसा है, जो कभी नहीं बदलता जो शुद्ध है, शाश्वत है, चैतन्य है, सदा स्वप्रकाशित है और वो शाश्वत सत्ता ही परब्रह्म, परमात्मा, त्रिगुणातीत ईश्वर है। उसके नाम भले ही अनेक हों, पर उसकी सत्ता, उसका स्वरूप एक ही है और इस परब्रह्म के इस परमस्वरूप का रक्षण करने वाली शक्ति का नाम ही गायत्री है।

उस माँ गायत्री के आध्यात्मिक तेज को उपनिषद् के ऋषि भर्ग कहकर के पुकारते हैं—वही भर्ग इस विश्व का भरण-पोषण करता है। पूरी सृष्टि माँ गायत्री के भर्ग से ही भरण करती है, उन्हीं के भर्ग में भ्रमण करती है और उन्हीं के भर्ग में क्षरण करती है। यह विश्व जन्म उन्हीं से लेता है, पोषित उन्हीं से होता है और समाहित भी उन्हीं में हो जाता है; इसीलिए माँ गायत्री भरण, रमण और गमन करने के कारण भर्गमयी यानी भर्गो, तेजोमयी यानी देवस्य एवं ज्योतिर्मयी यानी धीमहि—इन तीनों गुणों को अपने मंत्र के अंदर धारण करती हैं।

भर्गमयी, तेजोमयी, ज्योतिर्मयी गुणों वाली माँ गायत्री पूरी सृष्टि को जन्म देती हैं। उनकी जन्म देने वाली शक्ति सावित्री कहलाती हैं। उन्हीं गायत्री माँ से आनंदरूपी प्रवाह बहता है और इसीलिए माँ गायत्री की तीसरी शक्ति सरस्वती कहलाती हैं। माँ गायत्री की ये तीन शक्तियाँ ही तीनों लोकों की रचना करती हैं। वेदत्रयी का रहस्य भी वे ही हैं, तीन पादों में रमण करने वाली त्रिपदा भी वे ही हैं, ओंकार की तीन मात्राओं में भी उन्हीं की शक्ति है।

इस नवरात्र के अनुष्ठान में हम उन्हीं माँ गायत्री की तीन शक्तियों को पुकारते हैं। पुकारते समय हृदय से श्रद्धाभरी, विश्वासभरी, समर्पणभरी पुकार लगाई जाती है, ताकि जीवन में परिष्कार संभव हो सके। हमारे शरीर से रोज पसीना व मैल निकलता है, जिसे नहाकर के साफ करना पड़ता है। ऐसे ही अंतरात्मा के ऊपर मल, आवरण, विक्षेप की जो परतें इकट्ठी हो जाती हैं—उन्हें धोकर निकालने का नाम

ही परिष्कार है। जब हम हमारे चित्त पर छाए कषाय-कल्मष को, कपट-कलुष को रगड़-रगड़कर निकाल डालते हैं तो हमारे भीतर वो तेज जन्म लेता है, जिसे प्राप्त करना ही इस आध्यात्मिक अनुष्ठान का मूल उद्देश्य है।

नवरात्र के इस गायत्री अनुष्ठान में नियत दिनों में निर्धारित जप संख्या को पूर्ण किया जाता है। यदि 9 दिन में 24000 मंत्रजप पूरे किए जाएँ तो यह लघु अनुष्ठान कहा जाता है। 40 दिन में सवा लाख जप संख्या को पूर्ण करना मध्यम अनुष्ठान है और एक वर्ष में 24 लाख की जप संख्या को पूर्ण करने पर यह पूर्ण अनुष्ठान के नाम से जाना जाता है। वैसे तो माला में 108 दाने होते हैं, पर गिनती के क्रम में 100 ही दाने गिने जाते हैं और शेष 8 को भूल-चूक, अशुद्ध उच्चारण के लिए छोड़ दिया जाता है। जिनको इतना मंत्रजप कर पाना संभव न लगे, उनके लिए पंचाक्षरी गायत्री का अनुष्ठान करना भी श्रेष्ठकर रहता है। वो भी न कर पाने की स्थिति में गायत्री चालीसा के 12 पाठ प्रतिदिन अथवा गायत्री मंत्र लेखन का निर्देश भी बताया गया है।

अनुष्ठान के इन दिनों में ब्रह्मचर्य, उपवास का पालन किया जाता है। इन दिनों अपना शारीरिक कार्य किसी और से नहीं कराया जाता है। चमड़े की वस्तुओं का इन दिनों प्रयोग नहीं किया जाता है और जप समाप्त होने के बाद यज्ञ के साथ ही पूर्णाहुति दी जाती है। अनुष्ठान में न्यूनतम 1 घंटा और अधिकतम 6 घंटे के जप की मर्यादा है। 1 घंटे से कम का जप नित्य कर्म कहलाता है, उसे अनुष्ठान नहीं कहा जाता।

अनुष्ठान के लिए जप करने बैठें तो नहाकर-साफ वस्त्र पहनकर बैठें। पूजा के उपकरणों को साफ रखें। शारीरिक शुचिता का ध्यान रखने के उपरांत अनुष्ठान की दूसरी मर्यादा वैचारिक संयम एवं आत्मिक अनुशासन से निर्धारित होती है। आहार-विहार एवं आचरण—इन तीन पर आरोपित किया गया अनुशासन एक ऐसी ऊर्जा को जन्म देता है, जो साधक को अपने आंतरिक जीवन में उत्कृष्टता की प्राप्ति के लिए अनवरत प्रेरित करती एवं आगे बढ़ाती है।

इस वर्ष दो महत्त्वपूर्ण घटनाक्रम एक साथ घट रहे हैं। यह वर्ष हरिद्वार के पूर्ण कुंभ का वर्ष भी है एवं शांतिकुंज की स्वर्ण जयंती का वर्ष भी। निश्चित रूप से दो अलौकिक संयोगों के एक साथ घटने वाले वर्ष में किया जाने वाला नवरात्र अनुष्ठान भी विशिष्ट हो जाता है। सामान्य रूप से किए गए अनुष्ठानों की ऊर्जा मात्र व्यक्तिगत परिमार्जन में लग पाती है, परंतु इस वर्ष साधकों के द्वारा उत्पन्न ऊर्जा वैश्विक परिवर्तन की राह प्रशस्त करेगी—ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है। ❑

एक गाँव में एक व्यक्ति रहता था, जो बड़ा बुद्धिमान व चतुर था। उसने विभिन्न व्यक्तियों से विभिन्न कलाएँ सीखीं थीं और उसे इसका बड़ा अभिमान हो गया था। एक बार भगवान बुद्ध उसके गाँव से गुजरे। उनके साथ हजारों भिक्षुओं के समूह को देखकर उस व्यक्ति के मन में कुतूहल उत्पन्न हुआ और वो भगवान बुद्ध से मिलने पहुँचा। उनके समक्ष खड़े होकर उसने अपना परिचय दिया कि वो अनेक कलाओं का स्वामी है, वो तीरंदाजी में निपुण है, भाषाविद् है, नाव भी चलाना जानता है और जानवरों को भी काबू में रख सकता है। यह सब बताने के पश्चात उसने भगवान बुद्ध से उनका परिचय पूछा। बुद्ध मुस्कराए और बोले—"मैं उस कला का स्वामी हूँ, जिससे अपने मन को काबू में रखा जा सकता है। दुनिया का सारा ज्ञान आत्मज्ञान के अभाव में अधूरा है।" यह सुनकर उस व्यक्ति का अहंकार तिरोहित हो गया और वह भगवान बुद्ध के संघ में सम्मिलित हो गया।

नवरात्र-साधना की फलश्रुति

'साधना' नवरात्र की ऐसे करें।
'राम' कौशल्या-उदर से अवतरें॥

मनुज काया, कुशल-कौशल्या बने।
शील, संयम साध दिनचर्या बने।
साधना से जाग जाए आत्मबल,
नियंत्रण दश-इंद्रिय पर दशरथ धरें।
'साधना' नवरात्र की ऐसे करें॥

आए जीवन में हमारे सादगी।
त्याग का आदर्श हो यह जिंदगी।
हमारी कथनी व करनी एक हो।
आचरण, आदर्श को मुखरित करें।
'साधना' नवरात्र की ऐसे करें॥

जुटे साहस, जूझने दुष्वृत्ति से।
तप-तितिक्षा जन्य नैतिक शक्ति से।
निश्चरों से हीन करने को मही।
राम जैसा शौर्य व साहस वरें।
'साधना' नवरात्र की ऐसे करें॥

साधना, स्वाध्याय, सेवा रत रहें।
समय, साधन, विचारों में मिल रहें।
संतुलित, सात्त्विक, सुपाच्य अहार हो।
और वाणी से सदा मधुरस झरें।
'साधना' नवरात्र की ऐसे करें॥

लोभ की व मोह की लंका जले।
दंभ रावण का कि मिट्टी में मिले।
भोगवादी-दशानन के त्रास से।
वेदना संस्कृति-सीता की हरें।
'साधना' नवरात्र की ऐसे करें॥

—मंगलविजय 'विजयवर्गीय'

'आपके द्वार- पहुँचा हरिद्वार' अभियान के अंतर्गत केंद्रीय टोलियों का प्रस्थान

स्वामी विवेकानंद जयंती के अवसर पर युगतीर्थ-शांतिकुंज में संपन्न समारोह

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

प्र.ति. 01-03-2021
Regd No. Mathura-025/2021-2023
Licensed to Post without Prepayment
No: Agra/WPP-08/2021-2023

'आपके द्वार- पहुँचा हरिद्वार' अभियान के अंतर्गत छत्तीसगढ़ एवं बस्तर के परिजनों तक युगतीर्थ का पावन संदेश पहुँचाते प्रतिकुलपति देव संस्कृति विश्वविद्यालय

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक -- मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, पीयामंडी, मथुरा-281003 से प्रकाशित। संपादक - डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष--0565-2403940, 2400865, 2402574 मोबा.--09927066291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल- akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org